

८६२
अलोचना

न न्द दा स

•

रामरतन भटनागर, एम० ए०

ल • इलाहाबाद
१९४६

प्रथम संस्करण, १९४७
द्वितीय संस्करण, १९४८

❦

.. महल, ५६-ए, जीरो रोड, इलाहाबाद ।
.. ज्ञान जायसवाल, राम प्रिंटिंग प्रेस, कीटगंज, इला

इस पुस्तक को मैं अपने पूज्य असुरपद
कृष्णभक्त चाबू भगवतप्रसाद की दिवंगत
आत्मा को समर्पित करता हूँ जिनका नन्ददास
की जन्मभूमि और शिक्षाभूमि से एक चतुर्थ
शताब्दी का सम्बन्ध रहा ।

—रामरतन भटनागर

प्रथम संस्करण, १९४३
द्वितीय संस्करण, १९४८

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, बीरो रो
मुद्रक—सदलराम जायसवाल, राम प्रि

इस पुस्तक को मैं अपने पूज्य भगुरपद
 कृष्णभक्त चाचू भगवतप्रसाद की दिवंगत
 आत्मा को समर्पित करता हूँ जिनका नन्ददास
 की जन्मभूमि और शिक्षाभूमि से एक चतुर्थ
 शताब्दी का सम्बन्ध रहा ।

—रामरतन मठनागर

भूमिका

हिन्दी काव्य-साहित्य में नन्ददास और परिशिष्ट के नाम उल्लेखित हैं। वे नन्ददास-काल के ही हैं। नन्ददास के नाम से ही हमें नन्ददास के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त होता है। नन्ददास की मूर्ति का अन्वेषण करने के लिये हमें नन्ददास के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व का अध्ययन करना पड़ेगा। नन्ददास का नाम ही हमें नन्ददास के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त करता है।

नन्ददास का नाम ही हमें नन्ददास के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त करता है। नन्ददास का नाम ही हमें नन्ददास के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त करता है। नन्ददास का नाम ही हमें नन्ददास के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक व्यक्तित्व के अन्वेषण का मार्ग प्रशस्त करता है।

—रामरत्न मटनागर

विषय-सूची

१. शैली	१
२. रचनाएँ	५७
३. नन्ददास के काव्य में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त	११६
४. नन्ददास का पदावली साहित्य (गीत-काव्य)	१४४
५. नन्ददास की मूर्ति	१५६
६. काव्य और कला	१७४
७. परिशिष्ट—बल्लमाचार्य का शुद्धाद्वैतदर्शन और पुष्टिमार्ग	२१४

जीवनी

हमारे अग्र्य भक्त कवियों की भाँति नंददास ने भी अपने संबंध में कुछ नहीं लिखा है। अतः उनके संबंध में भी वही समझा है जो सूरदास और तुलसीदास जैसे प्रसिद्ध कवियों के संबंध में है। अब तक प्रयत्न करने पर भी हम उनके निश्चित, प्रामाणिक जीवनवृत्त का निर्माण नहीं कर सके हैं। फिर भी अन्तर्हाद्य और बहिर्हाद्य के आधार पर हम इस ओर प्रयत्न कर सकते हैं।

अन्तर्हाद्य की सामग्री बहुत कम है। अन्तर्हाद्य में ऐसी सामग्री का समावेश होता है जो कवि के अपने ग्रन्थों में पाई जाती है। जैसा हमने ऊपर कहा है नंददास ने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा है। अतः उनकी रचनाएँ हमें उनकी प्रतिदिन की परिस्थितियों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं देती। कवि किष्कंध का था, किष्क कुल का था, उसकी भाँति क्या थी, जन्मस्थान कहाँ था, हम कुछ नहीं जानते। रचनाओं से हमें उनके बल्लभकुल में दीक्षित होने और उस सम्प्रदाय के माननीय कवि होने के ही प्रमाण उपलब्ध हो सकते हैं। उनके गुरु विठ्ठलनाथ से यह कुछ पक्षों से जान पड़ता है और गुरु के प्रति उनकी निःसीम भक्ति विदित होती है—

प्रातः समै श्री वल्लभमुत्त कौ उठतहि रसना लीत्रै नाम,
 ध्यानंदकारी, मंगलकारी, अमुर हरन, जन पूरन धाम।
 इहलोक परलोक के बन्धु, कौ कहि सकै तिहारे गुन धाम,
 नन्ददास प्रभु रसिक शिरोमनि, राज करौ गोकुल मुख धाम।

(पदावली, २८०)

साथ ही यह भी विदित होता है कि वह बहुधा उनके अत्यन्त सन्निकट ही रहते थे। वे कहते हैं—

प्रातः समै श्री वल्लभमुत्त के बदन कमल कौ दरसन कीत्रै,
 तीन लोक बन्धित पुरुषोत्तम, उपमा कौ पटतर कौ दीत्रै।
 श्री वल्लभकुल उदति चन्द्रमा, यह छवि नैन-चकोरन पीत्रै,
 नन्ददास श्री वल्लभमुत्त पर तन-मन-धन न्योद्धावर कीत्रै।

(वही, २८१)

और उनकी कामना यही है कि वे बराबर विठ्ठल जी के चरण कमल का मकरन्द प्राप्त कर सकें—

श्री विठ्ठल मंगल रूप निधान
 कोटि अमृतसम हंस मृदु बोलन सबके जीवन धाम,
 कल्याण-विन्धु उदार कल्पतरु देत अभय पद धाम।
 शरण आये की लाज चहुँ दिश बाजे प्रकट निधान,
 तुम्हारे चरण कमल के मकरन्द मन मधुकर लिपटान।
 नन्ददास प्रभु द्वारे रतत हैं, क्वचत नहीं बहु धाम॥

(परिशिष्ट, ४०)

यह भी पता लगता है कि विठ्ठलनाथ के श्लेष पुत्रादि में भी उनकी भक्ति थी। 'विनय-पत्रिका' के स्तोत्रों की शैली पर एक श्लोक विशेषा अन्तिम पद है—

'नन्ददासन' नाथ पिता गिरधर आदि,
 प्रगट अवतार गिरिराजधारी

(पदावली, २८५)

उनके कुछ पदों से उनका ब्रज-प्रेम प्रगट है और यमुना की भक्ति भी कितने ही पदों में प्रगट होती है। "नन्दगाँव नीकी लागत मोको" जैसे पद कवि की श्रीवनी पर इतना ही प्रकाश डाल सकते हैं कि ब्रजवास उसे अत्यंत प्रिय था।

इस ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में हमने नन्ददास के दार्शनिक और धार्मिक सिद्धान्तों का विशद अध्ययन किया है। परिशिष्ट में बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक भीमद् बल्लभानन्द और विठ्ठलनाथ के दार्शनिक एवं धार्मिक विचार भी दिये गये हैं। दोनों की साधारण तुलना करने पर ही यह प्रगट हो जाता है कि वे बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित थे और उन्होंने इस सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का अत्यन्त गहरा अध्ययन किया था। उनके सारे ग्रन्थों से पता चला है कि वे कृष्ण को ब्रह्म और अपना इष्टदेव मानते हैं। उन्होंने वात्सल्य रस के भी कुछ पद लिखे हैं जिससे यह स्पष्ट है कि कृष्ण के बालरूप की भक्ति भी उनमें थी। परन्तु अविद्याश सामग्री का सम्बन्ध मोषियों और राधाकृष्ण की शृंगार-लीला से है। अतः ये मधुरभाव के भक्त थे।

परन्तु एक आश्चर्य की बात है कि अपने कुछ पदों में वे रामभक्त के रूप में प्रगट होते हैं जैसे कई पदों में उन्होंने राम के दूत हनुमान के सागर-लंघन की कथा लिखी है—

(१)

खर कूची हनुमान उदधि जानकी मुधि लेन कौ,
 देखन कौ दसमाथ, अपने नाथ कौ मुख देन कौ।
 आ गिरि पर चढ़ि कुलाँच लीनी उचकैयाँ,
 सो गिरि दस ओवन घसि गयो है परनी महियाँ।
 धरनी घसि गई पताल, भार परे जाग्यौ,
 सेठहु कौ सीध घाद, कमठ पीठ लाग्यौ।
 अरुन बदन तेज सदन बह्यौ पीन गाठ है,
 उचर तैं दन्दिन मानौ मेरु उद्घौ जात है।

का पद ही हमारे पास है, पर वह नहीं है,
 पर वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।
 पर वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।
 पर वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।

(२)

जो वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है,
 जो वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।
 जो वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।
 जो वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।
 जो वह ही हमारे पास है, पर वह नहीं है।

(३)

यह विधि मार दोहोरी दखनु दूनी भी खुनाय हो,
 दूरयो अनो धनुय ते गर परम मुग्ध हय की।
 पर पर अहाँ कात मोन ऐसी रात्रधानी,
 पेटन तिदि लक थक बाय न शरा मानी।
 पुर मन्दिर गिरी बन्दर मुन्दर नखि गई,
 रावण रणनाम दूँवो बहूँ न छोय पाई।
 तन कल्लो यह लेलिक सगरी नगरी उचक लीजे,
 तहाँई ले बाय रामहि जनकी दूँद दीजे।
 केषी दशकन्य अंध इहाँई ले मारो,
 केषी रघुशेर आगे बाँध रिपुरि डारो।
 यह विधि बल अपनो करि छोचत विष माही,
 नन्ददास प्रभु की मोहि ऐसी आइव नाही।

एक पद में नन्ददास ने 'रामकृष्ण' में अभिन्न भाव के प्रदर्शन कराये हैं—

रामकृष्ण कहिये निशिभोर

वे अवधेश धनुष घरे वे ब्रज जीवन मालिन चोर ।

उनके छत्र चमर सिंहासन भरत शत्रुहन लक्ष्मण जोर ॥

उनके लकुट मुकुट पीताम्बर गायन के संग नन्दकिशोर ।

उन सागर में शिला तराई उन राखें गिरिधर नखकोर ॥

नन्ददास प्रभु प्रपंच लजि भजिये जैसे निरत चन्द्र चभोर ।

इन पदों की भाषा-शैली में वह प्रौढ़ता नहीं है जो नन्ददास की अन्य रचनाओं में पाई जाती है। कदाचित् ये पद उनके वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले की रचना है। वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण की अनन्य भक्ति ही साध्य है। जैसा नन्ददास की प्रौढ़ रचनाओं में प्रकट है। इसलिए रामकृष्ण की अभिलता वाला पद कदाचित् सम्प्रदाय में दीक्षित होने से कुछ बाद की रचना है। यदि ये पद प्रामाणिक हैं तो इसमें संदेह नहीं कि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पहले नन्ददास का सम्बन्ध किसी रामानन्दी सम्प्रदाय से या अधवा के सेवक-सेवक-भाव के रामभक्त से, उसी तरह जैसे गुलामी।

नन्ददास की कुछ रचनाओं में यह प्रकट है कि उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान था और वे रसशास्त्र में भी परिणत थे। उन्होंने 'दशमस्कंध' में भागवत के दशमस्कंध के-२६ अध्यायों का अनुवाद उपरिष्ठ किया है, रासपंचाशत्वासी ग्रन्थ में वे जगदेव के 'गीतगोविन्दम्' की शैली का अनुकरण कर रहे हैं, नाममाला को उन्होंने 'अमरशेष के मास' लिखी है। अनेकार्थमंत्रों से भी उनके विपुल संस्कृत शब्दकोष का ज्ञान होता है। शायं अपने ग्रन्थों में उन्होंने अपने एक रसिक मित्र का उल्लेख किया है जो संस्कृत नहीं जानते थे, या कम जानते थे और इनके लिए उन्होंने संस्कृत से अनुवाद उपरिष्ठ किये। दशमस्कंध प्रथम अध्याय में नन्ददास लिखते हैं—



ग्रन्थ कियो है तामे चौपाईं धरी है—रूपमंजरी त्रिया को हीयो । सो गिरिधर निज आज्ञाय कियो ॥”

(पृष्ठ, ३६)

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि—

१—रूपमंजरी ग्वालियर की बेटी थी ।

२—वह वैष्णव भक्त थी, श्रीनाथजी की उपासिका ।

३—नंददास से उसकी गहरी मित्रता थी ।

४—वह वीरबादन और कीर्तन में अत्यन्त निपुण थी ।

५—नंददास ने रूपमंजरी ग्रन्थ उसी के लिए किया ।

‘रूपमंजरी’ के अतिरिक्त चार अन्य ग्रन्थों का नाम ‘मंजरी’ पर रखा गया है । इसमें कुछ रहस्य अवश्य है । ‘मंजरी’ शब्द नंददास को विशेष प्रिय है, यही लगता है । परन्तु क्यों प्रिय है, इसका समाधान केवल “प्राकट्यवार्ता” के इस उल्लेख से ही होता है । हो सकता है कि इसी की मित्रता को अमर करने के लिए और अपने सम्बन्ध के कारण इसे प्रतिदि देने के लिए नंददास ने रूपमंजरी की रचना की हो । “नंददास” के सम्पादक ने एक नया अनुमान उपस्थित किया है जिसका आधार रूपमंजरी की कथावस्तु है—

“कदाचित् रूपमंजरी का वैवाहिक जीवन असफल था और अन्त में वह कृष्ण-भक्त हो गई थी । ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उससे घनिष्ठता होने के कारण कवि ने उसके वृत्त को प्रकट न किया हो ।”

(पृष्ठ, ६३)

जो हो, नंददास के रक्तिक मित्र के सम्बन्ध में हम अभी पूर्णतया एकमत नहीं हैं ।

बहिर्दृष्ट के लिए अब हमें प्रचुर सामग्री प्राप्त हो गई है । अभी कुछ समय तक हमारे सामने केवल नामादास व भक्तमाल और त्रियादास ही रची हुई भक्तमाल की टीकाएँ तथा २५२ वैष्णव

कभी ही जाया है। कृष्ण मयन हुआ वनम माउसाय खीर लीं
 हल वन। भी कृष्ण मायगी एक'वा: नरीन प्राण हुई है श्री नंददा:
 लीक भीतर हल पर निर्माणमक वराय बायगी है। श्रीवे इ
 मयमा' को वितागू'क उपरिप'ा बनेते।

'भक्तमाल' (श्री० नाभादास, सं० १५६०—१६५०)

नंददास का समसामयिक उल्लेख केवल मन्थलाय में ही मिलता है।
 भाल में ही नंददासों का उल्लेख है। एक नंददास वेष्णव लोके
 उल्लेख २४८ श्लोक में इस प्रकार है—

निकट बोलो गाँव, गामे मोहवेनी,
 रहे नंददास विप्र भक्त साधु मेरा दास है।
 कई दिन भ्रम तापो, परे एक-वधुनि ली,
 कारि दरे रीत मोक्ष गामी जन लागी है ॥
 हाथ को प्रथम धरे, रीत पर जाय,
 बाही लियो है जियाय,
 देखि दोषी परो घाय, भक्ति भाव मति पाणी है।

ऐतिक प्रकाश में यह 'मियादास' का दोहा उद्धृत है। लिखा है
 बरेली के समीप एक ग्राम है। इससे नंददास पर विशेष प्रकाश
 जाता। ये नंददास हमारे चरित्रनायक से भिन्न हैं। नंददास के
 में जो दूसरा पद है, वह इस प्रकार है—

श्री नंददास ध्यानदनिधि रविक प्रसुधित रँगमरी ॥
 लीलापद रसरीति मन्थ रचना में नागर।
 सरस उक्ति जुग जुक्ति भक्ति रस गान उभागर,
 प्रसुर वपथ लौ मुखस रामपुर ग्राम निवासी।
 जल मुकुल संकलित भक्त पदरेजु उपासी,
 नन्ददास अमञ्ज सुदद परम प्रेमवध में पत्नी ॥
 रद से हम नंददास के विषय में इतनी बातें जानते हैं—

(१) नन्ददास मधुरभक्ति से उपासना करनेवाले वैष्णव हैं । 'रसिक' का अर्थ रसशास्त्र में निपुण, लौकिक शृङ्गार में लित पुरुष और मधुरभाव का उपासक भक्त—तीनों हो सकते हैं । फदाचित् नाभादास ने मधुरभक्ति या 'राधाकृष्ण' के प्रति शृङ्गारात्मक भक्ति होने के कारण ही उन्हें "रसिक" लिखा है ।

(२) उन्होंने ग्रन्थ-रचना की है । रचनाएँ दो प्रकार की हैं—लीलापद और रसरीति ग्रन्थ । नन्ददास के पदों से हम परिचित ही हैं परन्तु 'रसरीति' से शृङ्गार-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ मतव्य नहीं है । इस प्रकार के ग्रन्थों के उदाहरण नन्ददास के 'विरहमञ्जरी' और 'रूपमञ्जरी' ही सकते हैं । नन्ददास के काव्य की विशेषता भी बतला दी गई है । तर्कवाद, सरस उक्ति, भक्ति-रस-पूर्ण गीति-भाष्य ।

(३) यह नाभादास के ग्रन्थ के प्रणयन तक बहुत प्रसिद्ध हो गये थे ।

(४) ये रामपुर ग्राम के निवासी थे ।

(५) वे 'सुकुल' थे—अच्छे वंश के, या सुकुल जाति के ब्राह्मण ।

(६) चन्द्रदास उनके छोटे भाई थे ।

यह स्पष्ट है कि जब नन्ददास का यह उल्लेख नाभादास ने किया था, तब ये भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो गये थे, रचना भी कर चुके थे, यदि उसकी मात्रा थोड़ी रही हो, परन्तु रहते 'रामपुर' में ही थे । इसीसे यहाँ विठ्ठलनाथ आदि का उल्लेख न होकर उनके नाते उनके छोटे भाई का उल्लेख आया है ।

की सं० १७६६ की भक्तमाल की टीका (भक्ति-रस-रत्न) के विषय में विशेष कुछ नहीं लिखा गया

॥ का आविर्भाव नहीं हुआ था, नहीं है । सेवादास ने संवत् १८६४ में प्रियादास । इससे खान पढ़ता है कि तुलसीदास

और नन्ददास का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य ही था, क्योंकि उसमें तुलसीदास नन्ददास से कहते हैं—

‘तू मज में मत जाय’

तो नन्ददास उत्तर देते हैं ।

जब विध चुके तब आना जाना कैसा ।

(दे० श्री दीनदयालु गुप्त का लेख : महाकवि नन्ददास का जीवन चरित्र, हिन्दुस्तानी, जुलाई १९४०)

इन प्रमाण ग्रन्थों के बाद एक दूसरी भेटी के ग्रन्थ आते हैं ये हैं तीन वार्ता ग्रन्थ : २५२ वार्ता झाँझरवाली और भावनामाली तथा श्री गोसाईंजी के चार निवृत्त सेवकों की वार्ता । इन ग्रन्थों से नन्ददास के जीवन-चरित्र पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है, अतएव उन्हें विस्तार पूर्वक उद्धृत करना उचित होगा ।

काँकरीली के विद्याविभाग में ८४ वार्ता की सं० १६६७ की प्रिंट प्रति वर्तमान है । उसमें नन्ददास का वृत्तान्त इस प्रकार है—

अब भी गुसाईंजी के सेवक नन्ददासजी सनाद्व ब्राह्मण, रामपुरा में रहते, बिनके पद अष्टछान में गायत हैं, जिनकी वार्ता

प्रसंग १

सो ये तुलसीदासजी के भाई सनोटिया ब्राह्मण हते । सो तुलसीदासजी सो बड़े भाई, और छोटे भाई नन्ददासजी हैं । सो ये नन्ददासजी पड़े बहुत हते ।

तुलसीदासजी सो रामानन्दीन के सेवक हते । सो नन्ददासजी को रामानन्दीन को सेवक बरनायो । सो उन नन्ददास में लौकिक विषय में प्रीति हनी । सो कहूँ भैया नाचें सो तहाँ जावके टाँके रहे, सुने लगे । सो तुलसीदासजी नन्ददास को बहुत सगुण्यारे को बहाँ तहाँ द्रम मी देटिसे बरे । सो ये नन्ददास मानये नही ।

सो बहुत दिन में एक संघ पूरा तैं बहरो । सो भी रणनीहरी के दरटन को ओ डारवाजी को बरयो । तब नन्ददास ने मन में विषादी

जो—बने तो मैं हूँ ऐसे संघ में श्री रणछोड़जी के दर्शन करि आऊँ । तब नन्ददासजी ने तुलसीदासजी को कस्यो, जो तुम कहो तो मैं या संघ में भी रणछोड़जी को दर्शन करि आऊँ, तब तुलसीदासजी ने नन्ददासजी को बहोत समुझायो जो—तू वही मति जान, मार्ग में दुःख बहोत है । अनेक दुःख है । जो—जायगो तो तू भूट होय जायगो । ताते तू भी रणछोड़जी ताई न पहुँच सकोगो, बीच ही में रहेगो । ताते भी रघुनाथजी को स्मरण कर अपने घर में बैठो रहे ।

तब नन्ददास ने तुलसीदासजी को कस्यो जो—मेरे तो श्री रघुनाथजी हैं, परि मैं एक बार रणछोड़जी के दर्शन को अवश्य करिके जाऊँगो । तुम कोटि उपाय करो परि मैं न रहूँगो ।

तब तुलसीदासजी ने खान्यो जो—यह न रहेगो । जब संघ में जो—मुखिया सरदार हतो ताके पास नन्ददास को लेके तुलसीदासजी गये । और मुखिया को नन्ददास की भलापन तुलसीदासजी ने दीनी, जो—यह नन्ददास तुमारे संग आवत है । ताते तुम मार्ग में याकी खली राखियो । ऐसी करियो जो—इहाँ फेरि नन्ददास आवे, काहु गाम में रहि न जाय ।

तब वा मुखिया ने कस्यो जो—आछो, या बात की चिन्ता मति करो । वा पाछे वह संघ चलयो, जो वाके संग नन्ददास हू चलयो । सो बहुत दिन में वह संघ मधुराजी में आय पहुँच्यो । तब संघ तो मधुपुरी में रहो, और नन्ददास तो मधुपुरी की शोभा देखत देखत विधांत ऊपर आयो । सो वहाँ अनेक स्त्री पुरुष स्नान करत देखे, और सुन्दर स्वरूप के देखे सो नन्ददास तो मन में देखि के बहुत ही मोहित भये । और मन में विचार कियो जो—ऐसी जगद में बहुत दिन रहिये तो आच्छी है । सो वा मति नन्ददास अपने मन में सुभाये ।

वा पाछे नन्ददास ने अपने मन में यह विचार कियो जो—एक बार भी रणछोड़जी के दर्शन करि आऊँ । वा पाछे आइके विधांतपाट ऊपर रहने ।

तब वा लोड़ी ने आरके नन्ददास सों कह्यो जो—तुम इहाँ हमारे द्वार पे क्यों बैठे हो ! तब नन्ददास ने वा लोड़ी सों कह्यो जो—मैं तेरी बहू को एक बार मुख देखूँगो ता पाछे बलपान करूँगो, तब भाऊँगी । तब वह लोड़ी यह सुनिके अपनी बहू पास गई । और यह बात बहू सों कही जो—वह ब्राह्मण तो तिमहारो मुख देखि को जायगो । तब बहू ने लोड़ी सों कह्यो जो मैं बाको अपना मुख दिखाऊँगी नाहीं । वह तो आपसीते उठि धायगो ।

सो ऐसे ही नन्ददास को हू सांज पढ़ि गई × × × सो वा भौति सों लोड़ी ने अपनी बहू सों कह्यो जो जीवमान के ऊपर दया राखनी । ताते ब्राह्मण प्रातःकाल को भूषयो प्यासो घेठयो है, सो यह बात भाऊँ नहीं है । तब वह बात बहू के हिरदे में आई । पाछे पाछे वा लोड़ी के संग बहू द्वार ऊपर गई । तब नन्ददास बाको मुख देखि के उठि गये ।

सो वा भौति सों ये नन्ददास नित्य आवे सो बाको मुख देखिके चले जाय । तब बाके पाछे घर के धनी चञ्ची ने सुनी—जो यह ब्राह्मण हमारे घर बाको देखवे को आवत है । तब वा चञ्ची ने आरके नन्ददास सों कह्यो जो तुम हमारे घर के द्वार पर नित्य आवत हो, सो हमारी जगत में हाँसी बहोत होत है ।

तब नन्ददास ने वा चञ्ची सों कह्यो जो—मैं तुममें माँगत नहीं, बहुत तुमारे विगत नहीं । वा पाछे और तुम कहत हो मोसों, सो मैं तुमारे माये मरूँगो ।

तब यह नन्ददास के बचन सुनि के यह चञ्ची डरायो, जो अब यारें मैं बोलूँगो सो—यह ब्राह्मण इत्या देवगों, सो बहुत कहे नाहीं । और नन्ददास तो वेतेई नित्य आवे, सो बाको मुख देखिके परे बायें ।

वा पाछे कितेक दिन में यह बात समरे गाम में भई । जो—कलाने चञ्ची को बहू को एक ब्राह्मण देखिवे को नित्य आवत है । सो यह बात

तब उन सूत्री ने विचार कियो जो हम तो या ब्राह्मण के कुल मारे गाम छोड़िके आये । तोहू वह तो हमारे संग ही आयो है । तारो ऐसे जसन होई, जो यह हमारे संग भी जमुनाजी उतर के भी गोकुल न चले तो आहो है, नहीं हमारी हँसी भी गोकुलजी में होयगी । और भी गोसाईंजी यह बात सुनेंगे तो—यह बात अच्छी नहीं है ?

तब उन मलाइन सों कहे, घटवारन सों या सूत्री ने कह्यो जो हम तुमको कञ्चुक द्रव्य देंयगे, परि या ब्राह्मण को पार मति उतारो । पाछे वह सूत्री नाव में बैठयो, तब नन्ददासहू नाव पर बैठन लागे, तब उन मरुलाह ने हाथ पकरि के उतार दियो नाव पै सँ । तब नन्ददास तो भी जमुनाजी के तीर ठाढ़े ठाढ़े विचार करन लागे और वह सूत्री तो नाव में बैठिके भी जमुना जी के पार भयो ।

ता पाछे वह सूत्री भी गोकुल में आयके, लोंढी कों एक ठोर बैठाव के, याके पास सब वस्तुभाव धरिके आप तीनों जने भी गुसाईंजी के दरशन को आये । सो भी नवनीतप्रियजी के राजभोग के दरशन के ता पाछे अनोसर करायके भी गुसाईंजी अपनी बैठक में पघारे । तब इन तीनों जनेन ने भेट घरी, और दण्डवत कीनी ।

तब भी गुसाईंजी ने पूछी जो वैष्णव ! कब के आये हो ! तब इन कही जो महाराज अब ही आये हैं । भी नवनीतप्रियजी के राजभोग का शरती के दरशन आपनी दयाते करे हैं । अब भी गुसाईंजी कहे जो आज तुन प्रसाद इहाँ ही लीओ अब बैठो ।

ऐसे आज्ञा दे भी गुसाईंजी आप तो भोजन को पघारे । ता पाछे आज्ञामन करिके अपनी जूठन की दातरि वा सूथी को धरी । सो पार पावर भी गोसाईंजी ने उनके आगे धरी ।

तब वा वैष्णव ने भी गुसाईंजी सों किनती कीनी जो महाराज हम तो लीन ही जने हैं । और आपने चार पाती कौन कौन पा रही हैं । तो और वैष्णव कोई हीलत नाही ।

तब तो नन्ददास प्रसन्न होकर भी जमुनाजी को दण्डवत् करिके भी गोकुल को दंडवत् करि नाव में बैठिके पार आये। और आयेके भी गुणार्द्धजी को दर्शन करिके साष्टांग दंडवत् करी। सो दर्शन करत ही नन्ददास की बुद्धि निरमल होय गई।

तब तो श्री गुणार्द्धजी सो हाथ खोरि पिनती करी जो महाराज में तो जबतें जनम पायो, तबतें विषय करत ही जनम गयो। और आप सो परम कृपालु हो, मेरे ऊपर कृपा करिके मोकों अगनी शरण लीजे।

सो ऐसे दैन्यता के वचन नन्ददास के मुनिके श्री गुणार्द्धजी बहोत प्रसन्न भये। तब श्री गुणार्द्धजी भीमुख तें आशा किये जो नन्ददास, जाओ, स्नान करिके अपरस ही में इहाँ आइयो।

तब नन्ददास वैसे ही स्नान करिके अपरस ही में श्री गुणार्द्धजी के पास आये। श्री गुणार्द्धजी ने नन्ददास को नामनिवेदन (भावात्मक रूप सो) करवायो। तब श्री गुणार्द्धजी को स्वरूप नन्ददास के हृदय दृढ़ भयो, ता यने नन्ददास ने यह कीर्तन कियो सो पद, राग रिलावल 'जयति श्रीविक्रमीनाथ पदमावती-प्राणपति विप्रकूल-छत्र ध्यानन्दकारी'।

नन्ददास ने कीर्तन गायो। सो मुनिके श्री गुणार्द्धजी बहुत ही प्रसन्न भये। ता पाछे श्री गुणार्द्धजी नन्ददास को आशा दीनी—तेरी महाप्रसाद की पातर घरी है, सो जाइके महाप्रसाद लेवो।

सो नन्ददास आइके महाप्रसादी रसोईघर में जाइके श्री गुणार्द्धजी की जूटन को प्रसाद लेन लागे। सो लेत ही स्वरूपानन्द को अनुभव होन लग्यो। सो नन्ददास तो देह को अनुसंधान भूल गये, और जहाँ के तहाँ बैठि रहि गये। सो हाथ धोयवे की हू मुधि न रही।

जब उरयापन को समय भयो, तब भीतरिया ने आइके श्रीगुणार्द्धजी सो कह्यो—जो महाराजाधिराज—नन्ददासजी तो महाप्रसाद लेके उइ

ता पाछे प्रात भये श्रीनवनीतप्रियजी के मंगला के दर्शन करिके, शृङ्गार रात्रभोग करिके भी गुसाईजी श्रीनाथजी द्वार पघारे, और नन्ददास कोहू संग लियो। सो उत्थापन के समय श्री गिरिराज श्राद्द पढ़ोचे। श्री गुसाईजी तो न्हाय के मन्दिर में पघारे।

समो भयो तब दरशन को टेरा खुल्यो। सो नन्ददास श्रीगोवर्द्धननाथ के दर्शन करिके बहुत प्रसन्न भये। ता समे नन्ददास ने यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग नट—सोइत सुरंग दुरङ्ग पाग ललना कैसे लोइन लोने०।

यह कीर्तन नन्ददास ने गायो, सो श्री गुसाईजी मन्दिर में सुने। पाछे टेरा खँचि लियो। ता पाछे परमानन्द में नन्ददास ने बैठे-बैठे औरहू कीर्तन किये। पाछे संध्याति के दरशन खुले तब नन्ददास ने दरशन करिके यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग गोरी।

१. बनते सखन संग गायन के पाछे-पाछे श्रावत०।

२. बनते श्रावत गोरी०।

३. देखि सखी हरि को पदन सरोज०।

४. नन्द महरि के मिय ही मिय भावे गोकुल की नारी०।

सो या माँति नन्ददास ने सहोत कीर्तन किये।

ता पाछे नन्ददास ६ मास पर्यंत सूरदास जी के संग परासोली में रहे, पाछे श्री गोकुल में रहे। सो श्री गुसाईजी नन्ददास ऊपर उदा प्रसन्न रहते। वे नन्ददास ऐसे कृपापात्र भगवदीय रहे।

प्रसंग ३

और एक समय भी मधुराजी को एक संघ पूरव को चलयो, गया भाद करिवे को। ता संघ में दस पाँच वैष्णवहू हते। सो कितेक दिन यह संघ पूरव को चलयो, काशीप्री श्राद्द पढ़ोयो।

तब गुणगोदाश्रमी ने गुणो को संव सांगे है । तब क संव में गुण-
दाशमी ने आश्रम दूने को एक नन्ददास नाम्य इसी वे दने है, तो
अपु तब में गु-ने है । तो गुणने बहू देसने होर हो बने ।

तब एक वैष्णव ने बने को गुणगोदाश्री एक नन्ददास तो भी गुण-
की को सेवक भरो है । तो वह नन्ददास पदने तो आत्म्य रिखी हने, तो
अब तो बहो ही कृष्णदास मठारीव भरो है ।

तब गुणगोदाश्री अपने मन में विचारे—एतो तो बरी नन्ददास है,
तो भी गुणारंकी को सेवक भरो है । तो अब तो उनको मेरी टिक्का न
लगेगी ।

तब गुणगोदाश्री ने उन वैष्णव को बहो को मैं तुमको एक पत्र देऊँ,
ताही बचाव तुम मोको मंग्य देउगे ।

तब उन वैष्णव ने गुणगोदाश्र तो बही को कल मेरो मनुष्य भी
गोकुल को चलंगी । जो तुमको पत्र देनो होय तो लिलि के बेग
र्यार करियो । तब गुणगोदास ने ताही सने पत्र लिलि के तैपर
कियो । तामे लिख्यो जो नू पतिव्रत धर्म छोड़ि अविचार धर्म लियो,
तो आद्यो नाही कियो । अब नू आवे तो फेरि तौको पतिव्रत धर्म
बताऊँ ।

यह पत्र गुलसीदाश्री ने वा वैष्णव के हाथ दियो । सो वह पत्र
अपने पत्रन में धरि के वा वैष्णव ने फासिद के हाथ दियो । सो वह पत्र
लेके श्री गोकुल आयो । तब फासिद ने दंडवत करि के ये पत्र भी गुणारं-
की के आगे धरे । तब उन पत्रन में नन्ददास के नाम को वो पत्र हतो
सो निबल्थो । तब श्री गुणारंकी ने वह पत्र पांचि के नन्ददास को बुलाई
के दियो ।

तब नन्ददास ने वह पत्र लेके राँच्यो । पाछे वा पत्र को प्रतिकार
लिख्यो जो मेरो तो प्रथम रामचन्द्रकी सौं विवाह भयो हुतो । सो बीच में
कृष्ण दीरि आइके लूटि ले गये । सो रामचन्द्रकी में जो बल होतो
सो श्रीकृष्ण वैसे ले जाते ! और भी रामचन्द्रकी तो एक पत्नीव्रत

हैं। सो दूसरी पत्नीन कूँ कैसे सँभार सकेंगे ? एक पत्नीहूँ बराबर सँभारि न सके, सो रावण हरिके ले गयो। और श्रीकृष्ण तो अनन्त अवलान के स्वामी हैं, और इनकी पत्नी मर्दे पाछे कोई प्रकार को भय रदे नाही है। एक कालायच्छिन्न अनन्त पत्नीनकुं सुख देत हैं। जाओ मैंने श्रीकृष्ण पति कीने हैं। सो जानोगे। सो मैं तो तन, मन, धन यह लोक, परलोक श्रीकृष्ण को दीनों है। अब तो मैं परवश होइके परयो हूँ।

ऐसो नन्ददास ने तुलसीदासजी को पत्र लिखयो। तामें यह पद लिखयो। सो पद—

राग आशावरी—१. कृष्ण नाम जचते भवण सुन्यो री आली० ।

यह कीर्तन नन्ददास ने धा पत्र में लिखिके यह पत्र कासिद को छौप दियो। सो यह कासिद कितेक दिनन में काशीजी में आयो। सो वे पत्र सब वैष्णवन को दिये।

तब उन वैष्णवन ने यह नन्ददास को पत्र बाँचि के तुलसीदासजी को सुलाय के दीनो। पाछे तुलसीदासजी ने नन्ददास को पत्र बाँचि के अपने मन में कछो को अब नन्ददास इहाँ कबहूँ न आवेगो। ऐसो जाहि के तुलसीदास अपने घर आये।

सो वे नन्ददासजी श्री गुणार्द्धी के ऐसे कृपापात्र भगवदीय भये जिनको श्री गुणार्द्धी के स्वरूप में ऐसो दृढ़ भाव हतो।

प्रसंग ४

और एक समय तुलसीदासजी ने विचार कियो सो नन्ददास भी सोबुल में है, सो मैं आइ के लियाय लाऊँ। यह विचारि के तुलसीदासजी काशीतें चले, सो कितेक दिन में भी मथुराजी में आइ पहीये।

तब मथुराजी में ... काशीतें आयो ... एगो १ तब कबहूँ ने

बहो जो एक नन्ददास तो आइके भी गुसाईजी को सेवक भयो है, सो तो गोकुल होयगो, या गिरिराज होयगो ।

तब तुलसीदासजी प्रथम तो भी गोकुल आये । सो भी गोकुल की रोभा देखि के तुलसीदासजी को मन बहुत ही प्रयत्न भयो । पाके तुलसीदासजी मन में विचारे जो एखो स्थल छोड़िके नन्ददास कैसे चलेगो ?

तब तुलसीदासजी ने तहाँ पहुँचो जो एक नन्ददास ब्राह्मण है, सो वहाँ होइगो ! तब पाहू ने कही, जो एक नन्ददास तो गुसाईजी को सेवक भयो है । सो तो भी गुसाईजी तो भीनाथजी द्वार गये हैं, सो उहाँ ही होयगो ।

तब तुलसीदासजी केर मथुरा में आयेके भी यमुनाजी के दर्शन करे, पाछे वहाँ ते भी गिरिराजजी गये । सो वहाँ परासोली में तुलसीदासजी नन्ददासके मिले ।

पाछे तुलसीदास जी ने नन्ददास से कही जो हम हमारे संग जाओ । सो गाम दूचे तो अयोध्या रहो, पुगी दूचे तो काशी में रहो, पर्यंग दूचे तो चित्रकूट में रहो, बन दूचे तो दंडकारण्य में रहो । ऐसे बड़े-बड़े नाम भी रामचन्द्रजी ने पवित्र दिये हैं ।

तब नन्ददास ने उत्तर देपदेके ये पद गायो । सो पद—

जो गिरि दूचे सो वसो भी गोवर्द्धन०

पाछे नन्ददासजी तुलसीदासजी सो मिलि के भीनाथजी के दर्शन करावेके गये । तब तुलसीदास हू उनके पाछे-पाछे गये । जब भीगोवर्द्धन-नाथजी के दर्शन करे, तब तुलसीदासजी मायो नमायो नहीं । तब नन्ददासजी जानि गये, जो ये भीरामचन्द्रजी बिना और दूसरे को नहीं नमे हैं । नन्ददास ने मन में विचार कीनो जो वहाँ और भी गोकुल में इनको भीरामचन्द्रजी के दर्शन कराऊँ । तब ये भीगोवर्द्धन-प्रभाव बानेने । पाछे नन्ददास ने भीगोवर्द्धननाथ से विनयी की । सो दोहा—

कहा कहूँ लुबि आज की, भले बने हो नाथ
तुलसी मस्तक तब नभे, घनुष वाण लो हाथ

यह बात सुनिके भीनाथजी को भी गुसाईजी की कानते विचार
भयो, जो भी गुसाईजी के सेवक कहें, सो हमकुं मान्यो चहिए ।

पीछे भीगोवर्द्धननाथजी ने भीरामचन्द्रजी को रूप धरिके
तुलसीदास जी को दर्शन दिये । तब तुलसीदासजी ने भीगोवर्द्धननाथजी
को साष्टांग दंडवत करी ।

जब तुलसीदासजी दर्शन करिके बाहर आये, तब नन्ददास
भी गोकुल चले । तब तुलसीदासहू संग संग आये । तब आयके
नन्ददास ने भी गुसाईजी के दर्शन करि साष्टांग दंडवत करी और
तुलसीदास ने दंडवत करी नाहि ।

पाछे नन्ददास को तुलसीदास जी ने कही जो जैसे दर्शन तुमने
करा कराये हैं वैसे ही यहाँ फगवो । तब नन्ददासजी ने भी गुसाईजी
को विनती करी—ये मेरे भाई तुलसीदास हैं । सो भी रामचन्द्रजी
बिना और कुं नहीं नभे हैं ।

तब भी गुसाईजी ने कही जो तुलसीदास जी, बैठो ।

सा सभे भी गुसाईजी के पाचमें पुत्र भी रघुनाथजी वहाँ ठाढ़े
हुते, और उन दिनन में भी रघुनाथजी को विवाह भयो हुतो । तब
भी गुसाईजी ने कही जो रामचन्द्रजी ! तुमारे सेवक छाये हैं, इनको
दर्शन देवो । तब रघुनाथलालजी ने तथा भी जानकी महृजी ने
स्वरूप धरिके दर्शन दिये । तब तुलसीदासजी ने साष्टांग दंडवत
करी ।

पाछे तुलसीदासजी दर्शन करिके बहोत प्रसन्न भये । और यह पद
गायो । सो पद—

बानों अथधि भी गोकुल धाम ।

धरौ वरजू धरौ यगुना एक ही नाम० ।

ता पाते, तुलसीदासजी ने भी गुणार्द्धजी को दंडवत करके बनी जो महाराज नन्ददास तो पहले पड़ी चिपरी हुनो, सो अब पाओ रही धन्य भक्ति भई है। ताको कारण कहा है ?

तब भी गुणार्द्धजी ने तुलसीदासजी को बनी जो नन्ददास उचन पाय हुनो, पाते पुष्टिमार्ग में आपके प्रसूत भये। और अब बसन अराधा पाको तिष्ठ भई है। सो अब ये दृढ़ भये हैं। तब भी गुणार्द्धजी के भीमुख के बचन मुनिके तुलसीदासजी प्रमत्त होय भी गुणार्द्धजी को दंडवत करिके पाछे आप बिदा होय काही आये।

सो ये नन्ददासजी भी गुणार्द्धजी के ऐसे कृपाराज मगवदीय हुते। जिनके कहैते भीगोवर्द्धननाथजी को तथा भी खुनापलालजी को भीरामचन्द्रजी को स्वरूप धरिके दर्शन देने पड़े।

प्रसंग ५

सो एक दिन नन्ददास के मन में एसी आई जो वेते तुलसीदासजी ने रामायण भाग किये हैं, तेते हमहूँ भीमद्भागवत भाग करें। पाछे नन्ददास ने भीमद्भागवत दशम भाग संपूरण कियो।

तब मथुरा के सब पंडित मिलिके भी गुणार्द्धजी को बिनती कीनी, जो महाराज, हम भी भागवतकी कथा कहिके निरवाह करत हते, सो हमारे सेवक नन्ददासजी ने भाषा में भी भागवत करी है। सो अब हमारी कथा कोई न सुनेगो। ताते अब हमारी जीविका सो गई। सो अब आपके हाथ उपाय है।

तब भी गुणार्द्धजी ने नन्ददास को गुलाबके कह्यो जो नन्ददास हमने जो भीमद्भागवत भाषा में कीनी है, सो इन ब्राह्मणन की जीविका में हानि होत है। ताते हम ब्रजलीला तो पंचाध्यायी ताँई की राखी और सब भीजमुनाजी में पधराय दो।

सो नन्ददास ने भी गुणार्द्धजी की आज्ञा प्रमाण मानिके ब्रजलीला ताँई (भागवत) राखी, और सब भीजमुनाजी में पधराय दीनी।

सो वे नन्ददासजी भी गुगार्दजी के ऐसे आशाकारी और बड़े कृपावान् हते ।

प्रसंग ६

और एक सभे अकबर पातशाह और वीरवल भी मधुगजी आये, सो वीरवल श्री गुगार्दजी के दर्शन को आये । सो आनाथजी द्वार भी गुगार्दजी पधारे हते । और श्री गिरिधरजी घर हते सो—वीरवल श्री गिरिधरजी के दर्शन करिके अकबर पातशाह के पास आये । तब पातशाह ने पूछी—जो वीरवल ! तू कहाँ गया था ? तब वीरवल ने बहो जो दीक्षितजी के दर्शन को थी गोकुल गया था । सो श्री गुगार्दजी तो आनाथजी के दर्शन को श्री गोवर्द्धन पधारे हैं, और उनके पुत्र श्री गिरिधरजी घर ये, सो उनके दर्शन करके आया हूँ ।

तब पातशाह ने वीरवल सो बहो जो—दिन दो में हम भी श्री गोवर्द्धन चलेंगे, वहाँ से तुम जाकर दीक्षितजी के दर्शन कर आना ।

ता पाछे दिन दोय में अकबर पातशाह के डेरा गोवर्द्धन, मानसीगङ्गा पर भये । तब वीरवल श्री गोवर्द्धननाथजी के दर्शन को गोपालपुर आये । सो दर्शन करिके श्री गुगार्दजी को दंडवत् करिके ता पाछे अपने डेरा आये ।

पाछे नन्ददास ने सुनो जो—अकबर पातशाह के डेरा गोवर्द्धन मानसीगङ्गा पे भये हैं । सो अकबर पातशाह के एक लोड़ी हती । सो वह श्री गुगार्दजी की सेवक हती । ताके ऊपर श्री गोवर्द्धननाथजी बड़ी कृपा करते । बाकी दर्शन देते ।

वा लोड़ी सो और नन्ददास सो बड़ी प्रीति हती । सो नन्ददास वा लोड़ी सो मिलिने जो मानसीगङ्गा पे आये । सो तहाँ वा लोड़ी को झूटन लागे । सो वह लोड़ी एकांत ठौर में विलासू पे वृद्धन की लतान की तर्रें, रखेई करत हती । सो रखेई... रूखो हो । श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु पधारे हते ।

की देखे। सो दरशन करिके नन्ददास बहोत ही प्रसन्न भये। और कछो बो—पाके बड़े भाग्य है।

ता पाछे नन्ददास एक वृद्ध की ओट में ठाढ़े रहिके यह कीर्तन गायो। सो पद—

राग तोड़ी—चित्र सराहत चित्रवति दुरि मुनि गोरी बहाते सपानी०
यह कीर्तन तहाँ नन्ददास ने गायो। तब आने बो—इहाँ नन्ददास आये
हैं। तब वा लोड़ी ने चारी ओर देखे। तब देखे तो एक वृद्ध की ओट
में नन्ददास ठाढ़े हैं। तब वा लोड़ी ने नन्ददास को कछो, बो गुण .ऐसे
दिग्गके क्यों ठाढ़े हो ? मेरे पास क्यों नहीं आवत हो ?

तब नन्ददास ने कही—ओ राजभोग की समो हने, श्रीगोवर्द्धन-
नाथजी आरोग्यवे पचारे हते, तातेँ ही इहाँ ठाढ़ो होय राहो।

ता पाछे भोग सराय के अनोखर कराय के बहो—ओ मैं तुमहीं
कही नाही सकत हों, परि श्रीनाथजी की महाप्रसाद है, सामग्री रूप
की सामथी है। तामें तुमारो मन प्रसन्न होय सो लेउ। कारतेँ ओ गुण
ब्रह्मण हो।

तब नन्ददास ने कछो ओ अब तो मैं रचक-रचक सब सामग्री लेऊँगो।
तब उन दोउ अनेन ने प्रसन्नता सो महाप्रसाद लियो। ता पाछे आचमन
करिके बैठे। तब वा लोड़ी ने नन्ददास को कछो ओ अब इहाँ ते बहुत
न जानो होय तो आओ है। यहाँ ओ मानसोग्रहा है। यह श्री गिरिधर
प्रभुन की दया तेँ स्थल प्राप्त भयो है। तातेँ अब मैं कहूँ देख में न
कार्यो सो आओ है, और अब सग तुमारो संग होय तो आओ।

तब नन्ददास ने लोड़ी को कछो ओ प्रभु ऐसे ही करेगें। ता
पाछे लोड़ी ने कछो ओ अब इन शक्तिनि सो लौकिक को देनवो
नाही है।

पाछे नन्ददास शक्ति आने स्थान मानसोग्रहा के जाय रहे।
और प्रसन्न-काल श्रीगोवर्द्धननाथजी के दरशन की आये, सो श्रीगोवर्द्धन-
नाथजी के दरशन किये। और श्रीगुनारजी के दर्शन किये।

ता पाछे अकबर पातशाह के पास तानसेन रात्रिको गाववे आये ।
 सो तहाँ नन्ददास को कियो पद तानसेन ने गायो । सो पद—

... राम केदारो—देखो री, नागर नट नृत्यत कालिदी के तट० x x
 नन्ददास गावत वहाँ निपट निकट ।

यह नन्ददास को कियो पद सुनि के अकबर पातशाह ने तानसेन सो
 पूछी जो—बिछने यह पद बनाया है, सो कहाँ है ? तब वीरबल ने
 अकबर पातशाह सो कह्यो जो—साहब ! वह तो यहाँ ही है, भीनाथजी
 द्वार में रहता है । बड़ा कवि और भगवदीय है ।

तब देसाधिपति ने वीरबल सो कह्यो—इसी घड़ी उनको यहाँ
 बुलावो । तब वीरबल ने पातशाह सो कह्यो जो—साहब, वर तो इस
 भाँति से तो यहाँ न आवेंगे । मैं कहलाकर लिवा लाऊँगा ।

ता पाछे दूसरे दिन वीरबल गोपालपुर आये । तब भी गुसाईंजी के
 दरशन किये । ता पाछे नन्ददास से वीरबल ने कह्यो जो नन्ददासजी
 तुमको अकबर बादशाह ने बुलाये हैं । तब नन्ददास ने वीरबल सो
 कह्यो—मोंको अकबर पातशाह सो कहा प्रयोजन है ? मोंको कहु द्रव्य की
 चाहना नाहिं । जो—मैं जाऊँ । और मेरे कहु द्रव्य नाहीं जो अकबर
 पातशाह सेतयोगो । ताते हमारो कहा काम है ?

तब वीरबल ने कह्यो जो—तुम न चलोगे तो अकबर पातशाह ही
 तुमारे पास आवेगो ।

तब नन्ददास ने कही जो तुम इहाँ बाको मति लावो । यहाँ भीड़ को
 काम नाहीं है । ताते मैं सेनआरती पाछे भी गुसाईंजी सो दखत
 करिके मानसीर्गगा आऊँगे ।

पाछे नन्ददास सेनआरती के दरशन करि भी गुसाईंजी से दखत
 करिके विश होय के मानसीर्गगा आये । सो नन्ददास को देखि पातशाह
 ने सम्मान करि के बैठाए ।

ता पाछे अकबर पातशाह ने नन्ददास सो कह्यो जो तुमने
 द बनायो है तामे तुमने कह्यो है जो नन्ददास गावे तहाँ निपट

तो इनमें से कौन कौन बोधवत हो । जो तुम कहो थे—कोन मति ही
 कि कट लगे ।

तब नन्ददास ने पातसाह को कर्णों को मेरे बड़े को तुमको बिराज
 न हावतो । जो तुम्हारे पर मे पत्तानी (रूपसंघी ?) लौड़ी है तसो
 मम पूरु संड, मः मर जानर है ।

तब अकबर पातसाह ने बोधवत को तो नन्ददास के पास बैठाने,
 और आप अपने डेरा में जायके वा लौड़ी को पूर्ण, जो यह रास को
 पद नन्ददास ने गायो है, ता ताको अमिप्राय कहा है ?

तब यह बचन पातसाह के मुनिके यह लौड़ी पड़ाफ खाप के
 गिरि पड़ी, सो देह छूटि गई । सो यह लीला में जायके प्रात मई ।
 तब देसाधिपति नन्ददास के पास दारे ध्याये । सो इहाँ आयके देखे तो
 नन्ददास की हू देह छूटि गई है । सो एउ लीला में जायके प्रात मये ।

तब अकबर पातसाह को बड़ो आश्चर्य भयो । तब जाने बीरबल
 सो पूछी—जो इन दोउन की देह क्यों छूटि गई ? तब बीरबल ने
 पातसाह से कहा जो सादर इन अपने धर्म राखयो । काहे तँ यह बात
 बतॉयवे में न आवे, कदिव में न आवे । तसो या बात को तो यरी
 उपाय है ।

ता पाछे अकबर पातसाह अपने डेरान में आयो । ता पाछे यह बात
 वैष्णवन ने सुनी, सो आयके यह सनाचार सब भी गुमार्दों को बड़े,
 जो, महाराज ! नन्ददासजी ने तो मानसीगंगा पर या रीति सो देह
 छोड़ी ।

तब भी गुमार्दों ने भीमुखने बहोत ही सराहना करी । जो वैष्णव
 ऐसे ही अपने धर्म राखयो चादिप । जो और के आगे कहनो नाहिं ।
 सो यह नन्ददासजी और यह लौड़ी ऐसे भगवदीय हते । सो दोउ जनेन
 ने अपने धर्म गोप्य राखयो ।

सो यह लौड़ीहू ऐसी भगवदीय भई और नन्ददासजी हू थी गुमार्दों
 के ऐसे कृपापात्र भगवदीय हते । इनके ऊपर भी गुमार्दों की सदा

प्रसन्न रहते । और अपने स्वरूपानन्द को वैभव दिखायो । ताते उनकी वार्ता कहीं ताई लिखिये । ता वार्ता को पार ना आवे एसे भगवदीय भये ।”

ऊपर की वार्ता से हम नन्ददास के सम्बन्ध में निम्नलिखित निश्चित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

प्रसंग १—(१) तुलसीदास और नन्ददास में निकट का सम्बन्ध था । ये भाई थे, कैसे भाई, यह नहीं लिखा । ज्ञाति उनकी सनाढ्य प्रादाण थी ।

(२) वे बड़े रक्तिक थे ।

(३) तुलसीदास उन्हें बराबर नियंत्रण में रखते, और खोज-खबर लेते रहते, इसलिए वे आसु में उनसे छोटे अवश्य रहे होंगे ।

(४) उनका स्वभाव बड़ा उच्छुद्ध और हठी था । तुलसीदास के समझाने पर भी वे अयोध्या नहीं ठहरे, और जब सच मथुरा टहर गया, तो अथेले ही आगे चल पड़े । क्षुधाप्या की वार्ता से भी यही सिद्ध होता है । उन्हें लोक लज्जा थी ही नहीं ।

(५) विठ्ठलनाथजी के प्रथम दर्शन का ही उन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा और वे उन्हीं द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हुए ।

प्रसंग २—वे शीघ्र ही गुंछाईजी के कृपापात्र हो गये । उन्होंने उन्हें उपदेश के भेदों से अदगत कराया और विशेष शिक्षा के लिए सुरदास के पास रख दिया । उनके पास वे लड़ महीने रहे ।

प्रसंग ३—तुलसीदास अनन्य कष्टर रामभक्त थे । उन्होंने नन्ददास को कृष्णभक्ति सम्प्रदाय में दीक्षा लेने से विरत करना चाहा, परन्तु सफल नहीं हुए ।

प्रसंग ४—तुलसीदास गोकुल आये । वहाँ सुरदास और विठ्ठलनाथ ने उन्हें राम-कृष्ण के अभेदत्व से परिचित कराया ।

प्रसंग ५—तुलसीदास के अनुकरण में नन्ददास ने भागवत की भाषा की, परन्तु गुंछाईजी के कहे से ब्रजलीला पर्यन्त रखकर शेष अलभ्य कर दी ।

नाम इन तरह पर छाया है किम तरह की भी लेखक आना नाम ही विषय सकता। इन उल्लेखों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि कोई लेखक गोबिन्द गोबिन्दनाथ के सम्बन्ध में लिख रहा है।”

०. प्रथम में श्रीगणेश के मन्दिर तुलसी का वर्णन है जो १६६६ ई. में पढ़ने की बात नहीं हो सकती। गोबिन्दनाथजी का समय १५५१ ई. में १६६० ई. तक है। इस प्रकार गोबिन्दनाथजी बाद की घटना से परिचित नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त एक और स्थान पर उसमें १६६६ ई. की घटना तक का उल्लेख है।

२. '८४' और '२५२' वार्ताओं के अनेक रूपों में भी बहुत अन्तर है। “एक ही व्यक्ति अपनी दो रचनाओं में व्याकरण के इन छोटे-छोटे रूपों में इस तरह का भेद नहीं कर सकता।” डॉ० माताप्रसाद गुप्त अपने प्रथम तुलसीदास (प्र० १६४२) में कई नये संदेह उपस्थित करते हैं।

१. “वार्ता में पुष्टिमार्ग के लिए शताशत रूप में कुछ सुझाव जान पड़ता है।

२. उसमें कुछ प्रामाणिक घटनाएँ सालत लिली गई है जैसे “वार्ता” के अनुसार नरवरगढ़ के राजा आसकरन गोसाईं विठ्ठलनाथजी के शिष्य थे किन्तु नभादासजी का वचन है कि वह कीलदेव के शिष्य थे जो विशेष प्रामाणिक माना जाना चाहिए।”

इसलिए (१६४१ ई०) में प्रकाशित ‘प्राचीन वार्ता-रहस्य, द्वितीय भाग’ में वार्ता की प्रामाणिकता का विशेष अध्ययन उपस्थित किया है। इसके अनुसार

१. वार्ताएँ वास्तव में मौखिक प्रवचन हैं।
२. धात्रकल जो वार्ताएँ उपलब्ध हैं, उनके मूल रूप से मिलते हैं—एक साधारण वार्ता, दूसरी भावनावाली वार्ता, जिनमें एक प्रकार से वार्ता-कथाओं की साम्प्रदायिक दृष्टि से टीका कर दी गई है।

अधिकांश उपलब्ध वार्ता-प्रतियाँ भावनावाली हैं, यद्यपि डॉ० वर्मा द्वारा सम्पादित संस्करण पहले प्रकार की वार्ता पर आधारित था।

३. मूल वार्ताओं के मौखिक प्रवचन का समय सं० १८४२ से सं० १६४५ तक निर्धारित होता है जब कि गुसाईंजी का निरोधान हो जाता है और श्री गोकुलनाथजी की उत्कृष्टता का समय आता है।

४. "सं० १६६७ की वार्ता की एक हस्तलिखित प्रति काँकरोली में उपलब्ध है, अतः क्रम से क्रम सं० १६६७ तक वार्ता की पुरतर्कों का लिपिवद्ध संस्करण हो चुका था।

५. " 'वार्ता' के तीन संस्करण हुए हैं। प्रथम संस्करण श्री गोकुलनाथजी के कथा-प्रवचन के मनन का मूल रूप है जो उनके हास्य-प्रसंगों के समस्त वचनानाम्न रूप में प्राप्त होता है। न तो इसमें ८४ और २५२ का वर्गीकरण ही हुआ है और न सभी वैष्णवों की वार्ताएँ ही इसमें लिखी गई हैं। इसे हम संग्रहात्मक वार्ता-साहित्य कह सकते हैं। इनका समय सं० १३४५ से सं० १६६० तक माना जाता है। द्वितीय संस्करण श्री गोकुलनाथजी के समय और तस्या-वधान में श्री हरिरायजी द्वारा हुआ। इस समय वार्ताओं का वर्गीकरण और संकलन करते हुए 'चौरासी' तथा 'दो सौ बावन' वैष्णवों की संख्या का नाम रखा गया। इस समय की वार्ताओं में प्रसंग आने पर 'श्री गोकुलनाथजी' के नाम का निर्देश होने लगा, श्री श्री हरिरायजी ने अपनी ओर से उल्लिखित किया है।

"इस संस्करण का समय सं० १६६४ से सं० १७३५ तक माना जा सकता है।

"तृतीय संस्करण—श्री गोकुलनाथजीके अनन्तर और श्री हरिरायजी के समय इसका संकलन हुआ। इस समय वार्ता में ऐसे आदर्शक प्रसंग-वाक्य भी सम्मिलित हो गये हैं, जिनके बिना प्रसंग की अपूर्णता विदित थी। अथवा जो अधिक स्पष्टीकरण के लिए उपयुक्त

खे। इसी समय श्री हरिरायजी ने अपना 'भावप्रकाश' नामक टिप्पण लिखा, जो वार्ता के शार्द को विशेषता के साथ समझने में समर्थ है। इस संस्करण का समय सं० १७३५ के अनन्तर सं० १७८० तक आता है।

६. " 'भावप्रकाश' की रचना सं० १७३५ के आस-पास हुई। वार्ता के बाद के संस्करण में इसकी कितनी ही बातें मिला ली गईं होंगी। "

ऊपर की विवेचना से उन संदेहों का निराकरण हो जाता है जो हायटर श्री धीरेन्द्र वर्मा ने वार्ता के सम्बन्ध में उठाये हैं। डा० माता-प्रसाद का पहला तर्क तो कोई तर्क नहीं है। वार्ता निश्चय ही साम्प्रदायिक ग्रन्थ है, ऐतिहासिक ग्रन्थ के लिए उसका प्रमाण स्तर्कता से ही रहता आना चाहिए। हाँ, दूसरा तर्क अवश्य दृढ़ है। परन्तु यदि हम काश्चित् "कीर्तन संग्रहों" को ध्यान से पढ़ें, तो हमें 'आसकरनजी' का एक बड़ा विपुल कृष्ण-पद-साहित्य मिलेगा। हो सकता है, वे पहले जज्ञदेव के ही शिष्य रहे हों, परन्तु बाद में वे कृष्ण-सम्प्रदाय (बल्लभ-ल) में दीक्षित हो गये हों। कम से कम उनका पद-साहित्य तो उनकी भ्यु-भक्ति का ही प्रमाण उपस्थित करता है। वह समय कृष्ण-लिक के अभ्युत्थान का था। नन्ददास जैसे रामानन्दी राम-भक्त बल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये, तो फिर क्या यह सम्भव नहीं है आसकरन भी पहले राम-भक्त रहे हों, फिर बल्लभ सम्प्रदाय में क्षित हो गये हों ?

तीसरी श्रेणी के प्रमाण-ग्रन्थ स्रोतों में प्राप्त नहीं। समझी है। वे हैं—

१—रामचरितमानस की हस्तलिखित प्रति, श्रीरौ, सं० १९४१

२—वर्षरत्न, लेखक कृष्णदास, सं० १९८७

३—मूर्धरक्षेप-महात्म्य, लेखक वही, सं० १९५७

४—अनुरागीत की हस्तलिखित, लेखक ब्रजचन्द्र, सं० १९७२

५—रत्नावली दोहा-संग्रह ।

६—रत्नावली-चरित, लेखक मुरलीधर, सं० १८२६

अब हम अलग-अलग इन पर विचार करेंगे ।

सोरो में प्राप्त श्री रामचरितमानस की हस्तलिपि प्रतियों में बालकांड और अरण्यकांड की पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं—

“इति श्री रामचरितमानसे सकल कलिकलुपविध्वंसने विमल वैराग्य-सम्पादिनी नाम १.....वासी नन्ददास-पुत्र कृष्णदास हेत लिखी श्रुनाथ ने काशीपुरी में ।”

(बालकांड की पुष्पिका)

“इति श्री रामायणे सकल कलिकलुपविध्वंसने विमल वैराग्य सम्पादिनी बट मुजन सम्पादे रामवन चरित्र बननो नाम द्वितीयो सोपान अरण्य-कांड समाप्त ॥ ३ ॥ श्री तुलसीदास गुरु की आशुओं से उनके आता मुत कृष्णदास सोरो क्षेत्र निवासी हेत लिखित लक्ष्मिनदास काशीपुरीजी मध्ये सम्बत् १६४३ अषाढ सुदी ४ सुके इति ॥”

(अरण्यकांड की पुष्पिका)

‘वर्षफल’ का आरम्भ इस प्रकार है—

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथ वर्षफल लिख्यते । कवित्त । गनपति गिरीस गंग गौरी गुरु गीरवान गोपवेश गोकुलेष गोपी गुन गाह के भूमि देव देव दिविगाम घाम देवी देव तात मात पादकंज मंजु सरिस नाह के सर सोम भौम सौमदेव गुरु दैत्य गुरु शुक्र शनि राहु केतु बटे पत्ते साह के बालबोध आस कविदास दास कृष्णदास गावतु हो वर्षफल वर्षमंथ प्याह के ।

अथ सूर्यफल ॥ दोहा ॥

- वर्ष लगन रवि षष्ठ पितृघ्न विवाह तिथि रोग कृष्ण चित्त-चिन्ताकुलित करत हरत सुप भोग ॥ १ ॥
- तात अनुज चन्द्रहास बुधवर निरदेसहि भारि । लिख्यो जयामति वर्षफल बालबोध संचारि ॥ २ ॥

पद्य इस प्रकार है—

कीर्ति की मूर्ति वहाँ रात्रे मंगलय को
 तीर्थ वराह भूमि वेन्दु तु गाई है
 बाही बाग रामपुर स्वाम सर कीने तात
 स्वामायन स्वामपुर बाग सुरदाई है
 मुकुल विमंगल में विषय तहाँ जीसाम
 तामु पुत्र नन्ददास कीर्ति कवि पाई है
 तामु मु० हो कृष्णदास वरंछल माया रच्यौ
 चूक होई सोये मम जनि सपुतारै है
 सोरह सी छताननि विक्रम के मांक मई
 अति कोष दृष्टि विरय के विषादा की
 शीतल अपद बड़ लाह बड़ि देवपुन
 बूढ़ी गङ्ग जन्मभूमि रत्नावली माता की
 नारी नर बूढ़े बहु संघ बड़ भाग रहे
 चिन्ह मिटे कदरी के दुखद कया ताकी
 अमु नम कृष्ण माय तेरति सनि कृष्णदास
 वरंछल पूर्यौ मई दया बोध दाता की ॥१॥

इति भी कवि कृष्णदास विरचितम् वरंछलम् सम्पूर्णं सम्बन् १६७२
 मार्गतिर कृष्ण तृतिया ३ गुरुवागरे सद्वचन नगरे ॥ शुभम् ॥
 शुभम् ॥

सूक्त श्रेष्ठ महात्म्य के आरम्भ में इस प्रकार है—

श्री गणेशाय नमः । ॐ नमो भगवते वराहाय ॥ अत्र कृष्णदास
 सूक्त सूक्त श्रेष्ठ महात्म्या लिख्यते सोरठा । गनपति गिरि गिरीश गिरिग
 त्त गुरुचरन ॥ वन्दे तु पुनि जगदीश कृषि वराह महि उदरन ॥ वन्दे तु
 लसीदास पितु बड़भाता पद जलज ॥ जिन निज बुद्धि विलास
 रच्यौ ॥ सानुत्र भी नन्ददास पितु की वन्दे तु चरन रच ॥

धीनो मुजस प्रकाश रासपंचअध्याय मनि ॥ बन्दहु चरन जलजात सुमिरि
लहि तिप सुरमली ॥ सकल वंस दुजमूल पिवरन पद हरसिज नमहुँ ॥
रहि सदा अनुकूल कृष्णदास निज असंगान ॥

मन्य की पुष्पिका इस प्रकार है—

लेखक पाठक्योः शुभं भूयात् ॥ सम्बत् १८७० मिति नातिक वदी ११
एकादशी बुधवासरे । लिलित विवसहास कायरस सोरों मध्ये ॥श्री॥ ॥श्री॥
॥श्री॥ ॥श्री॥ ॥श्री॥ ॥श्री॥ अभं मुग्लीवर कृत छुप्यै लिखयते ॥ जय जय
आदि बराह छेव तपभूमि सुहावनि.....इति छुप्यै सम्पूर्णम् ॥
कृष्णदास वंसावली.....नन्ददास सुन हों भरो कृष्णदास मतिमन्द ॥
चन्द्रदास सुवसुत अहे चिरजीवी ब्रजचन्द्र ॥१०॥इति॥ इति.....
धी भाया शकर छेव महात्म्य सम्पूर्णम् सम्बत् १८०६ गिरिवतम
पं० मुरलीधरेण ॥

‘भ्रमरगीत’ वास्तव में नन्ददास का भ्रमरगीत है । उसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

भ्रमरगीत सन्पूरनम्.....नन्ददास भ्राता तुलसीदास को स्याम-
सरवासी सोरोबी मध्ये .लिलित कृष्णदास बेटा नन्ददास नाती जीवाराम
के शुक्र श्यामपुरी सनाढ्य.....भरद्वाज गोती सच्चिदानन्द के बेटा
रामायन के करता तुलसीदास दूजे.....रा नन्ददास चन्द्रदास तिनके
बेटा कृष्णदास के बेटा ब्रजचन्द्र पोथी लिखी माष.....। जे चन्द्रनार
सम्बत् १६७८ शुभम् ।

न कियी ही यह लीला गाइ पाइ रसपुंजना बन्दो तुलसीदास के
चरना सानुज नन्ददास दुग्वहरना जिन पित्र आत्माराम मुहाए जिन
सुत रामकृष्ण जस गाए (ने) ये सुवन मम मुह प्रवीना दास कृ-
मम नाम सीचोना शुक्र सनाढ्य तेव गुणराषी चर्मपुगीण .
वासी बालकृष्ण में उनकर दा (गा) , रा) कर छेव जान मम वासी

'दीहा रतनावली' में जो तुलसीदास की पत्नी रतनावली (सं० १६५१) के दोहों का संग्रह कहा जाता है, एक भी है जिससे नन्ददास और तुलसीदास के सम्बन्ध पड़ता है—

मोहि दीन्हों संदेश पिय अनुत्र नन्द के हाथ
रतन समुक्ति बनि पुयक मोहिं सो सुमरत रघुनाथ
पं० मुरलीधर का 'रतनावली चरित' अत्यन्त प्राचीन प्रमाण नहीं है
भी उससे महत्वपूर्ण प्रमाणों की सत्यता सिद्ध होती है। उसमें नन्ददास
उल्लेख कई जगह है—

तबहि पीत इक दर्द आष। मुह रुविह के जाउ पाष
रमारत वैष्णव सो पुनीत। सकल वेद आगम अघोत
अकतीर्थ द्विग पाठशाल। तहीं पढ़ावत विपुल ज्ञान
तहीं रामपुर के सनाढ्य। मुकुल वंशधर है गुनाढ्य
तुलसीदास अरु नन्ददास। पढ़त करत विद्या-विलास
एक पितामह पौत्र दोउ। चन्द्रहास लखु अरर सोउ
तुलसी आतमारामभूत। उदर कुलासो के प्रभूत
गये दोउ सँ अमर सोऊ। दादी पोतहि करि लखोऊ
बसत जोग भारग समीप। विमर्षण कर दिख दीन
एक दूसरे स्थान पर इस प्रकार लिखते हैं—

नन्ददास और चन्द्रदास। रहहि रामपुर मातु पाव
दमति बनि बाराह धाम। लखन गोपु आठठु धाम
पं० रामचन्द्रम निभ (पं० मुरलीधर चतुर्वेदी के शिष्य) के हाथ की
लिखी 'रतनावली चरित' की प्रति में मुरलीधर के कुछ श्लोक भी मिलते
हैं। एक श्लोक इस प्रकार है—

एक पितामह लखन दोउ जनमें बुविगभी
सोउ एरहि मुह रुविह कुप्य अग्ने बाजी

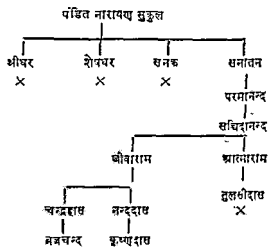
दुलसीदास नन्ददास मते हैं सुरली घारे ।
 एक मते सियाराय एक घनरत्नम पुकारे
 एक बसे सो रामपुर एक श्यामपुर महुँ बतै ।
 एक राम गाथा लिखी एक भागवद् पद कहै

इसी प्रति में कृष्णदास की वंशावली भी लगी हुई है जो इस प्रकार है—

सेत वाग्दः समीप शुचि गाम रामपुर एक
 लहं पंडित पंडित बसत सुकुलवंश सविवेक ।
 पंडित नारायण सुकुल तामु पुरुष परधान
 भारथो सत्य सनाढ्य पद है तप वेद निधान ।
 शस्त्र शास्त्र विद्या कुशल मे गुरु दौण समान
 महारत्न निज मेदि दिन पाथो पद निर्बान ।
 तेहि सुत गुरु ज्ञानी भये भए पिता अनुहारि
 पंडित भीषर शेषर सनक सनातन चारि ।
 भये सनातन देव सुत पंडित परमानन्द
 व्यास सरिस शक्ता तनय जामु सच्चिदानन्द ।
 तेहि सुत आत्माराम बुध निगमात्म परवीन
 लघु सुत जीवाराम ये पंडित परम सुधीन ।
 पुत्र आत्माराम के पंडित दुलसीदास
 तिमि सुत जीवाराम के नन्ददास चन्द्रदास ।
 मधि मधि वेद पुरान सब काव्य शास्त्र इतिहास
 रामचरितमानस रच्यौ पंडित दुलसीदास ।
 बल्लभ-कुल बल्लभ भये तामु अनुब्र नन्ददास
 घरि बल्लभ आचार दिनरच्यौ भागवतराम ।
 नन्ददास सुतहो भयो कृष्णदास मतिमद
 चन्द्रदास सुप सुत अहे पिरजीवी ब्रजचन्द ।

इस सारी सामग्री में लगभग एकसूत्रता है, कहीं विशेष विरोध नहीं है। जिन बातों का पता हमें इससे लगता है, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) तुलसीदास और नन्ददास चचेरे भाई थे। उनका वंश-वृक्ष इस प्रकार है—



इन्हीं कृष्णचन्द्र ने 'वर्षावली' और 'वंशावली' की रचना की। ब्रजचन्द्र का नाम उन्होंने त्रिभुवने से लिया है, उससे पता चलता है कि उनके समय तक कुटुम्ब सम्मिलित रहता था और आपस में सहाई था। इन्हीं कृष्णदास के लिए किसी रघुनाथ ने काशी में १५११ शके में रामचरितमानस की प्रति लिखी (सम्भवतः उनके चचा तुलसीदास ने यह प्रति लिखाइस ही होगी।) अक्षरवर्णन की विधा में तुलसी की आटा का स्पष्ट दफ़्त है। दोलक कोई

लक्ष्मिनदास हैं। संवत् १६४३ है। इससे जान पड़ता है कि कृष्णदास कम से कम दो-दोई वर्ष दुलसीदास के पास काशी में अवश्य रहे होंगे। कदाचित् कृष्णदास पिता की मृत्यु का समाचार लेकर सांघना के लिए दुलसीदास के पास गये हों।

(२) नन्ददास की जन्म-भूमि रामपुर ग्राम थी जो सूकरक्षेत्र (घोरी) के पास है। नन्ददास ने इस ग्राम का नाम रामपुर से बदल कर श्यामपुर रख दिया। उन्होंने यहाँ 'श्यामशर' नाम का एक तालाब भी खुदवाया। नन्ददास ने यह नाम कब बदला होगा, इसका आभास बार्ता की कथा से मिलता है। अब कृष्णदास सूरदास के पास से रामपुर लौटे होंगे, तब ही उन्होंने ऐसा किया होगा क्योंकि पहले तो वे स्पष्टतया राममऊ थे। उन्होंने अपने पुत्र का नाम भी कृष्णदास रखा है। इससे यह स्पष्ट है कि यह नाम भी शरणागति के बाद रखा होगा, यह भी अनुमान हो सकता है।

(३) नन्ददास माता-पिता के मरने के बाद दादी के पास छिट्टे योगमार्ग चले आए। वहाँ दुलसीदास के समय के रामानन्दी दुर्ग सिंह से संस्कृत आदि का अध्ययन करते रहे। इसके बाद दुर्ग सिंह की शादी होने पर वे माता के पास रामपुर चले गये वहाँ वे अपने भाई चन्द्रहास के साथ रहने लगे।

(४) कृष्णदास ने अपनी माता का नाम, *कमला* रखा है। स्पष्ट है नन्ददास ने विवाह *...* । *...* का नाम था।

भ्रान्त्य उसमें भी प्रकाश्य है। तुलसीदास ने नन्ददास के हाथ पत्नी को संदेश भेजा, यह बात 'वार्ता' की घटनाओं के अनुकूल नहीं पड़ती, क्योंकि नन्ददास तो काशी में तुलसीदास के पास से चलकर सीवे विठ्ठलनाथजी के पास पहुँचे थे और वहाँ पुष्टिमार्ग में दीक्षा हो गये थे। परन्तु नवीन सामग्री (हारराय की भावनावाली वार्ता १६६६) से यह दृष्ट हो गया है कि विठ्ठलनाथजी के पास ६-७ महीने या लगभग एक वर्ष रहकर नन्ददास सूदास के आग्रह से रामपुर चले आए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रत्नानली की काशी का वृत्तान्त सुनाया होगा और स्मृति के आधार पर तुलसीदास का संदेश कहा हो।

इस सारी सामग्री को प्रामाणिक सिद्ध नहीं किया गया है। वास्तव में इसकी अभी विस्तृत और अच्छी परीक्षा भी नहीं की गई है। वैसे विद्वानों के दो दल हैं, एक रामरेश त्रिपाठी, हरिशंकर शर्मा, टीनदयालु गुप्त, और काँकरोली से सम्बन्धित विद्वान् जो 'वार्ता' से मिलती जुलती होने के कारण इस सामग्री को प्रामाणिक मानते हैं। दूसरी ओर के विद्वान् डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'तुलसीदास' में इस सामग्री की विस्तृत बहिरंग और अंतरंग परीक्षा उपस्थित की है (दे० तुलसीदास, पृ० ८०-६५)। बहिरंग परीक्षा में उन्होंने लगभग प्रत्येक सामग्री की प्रामाणिकता पर संदेह उपस्थित किया है। यह परीक्षा कहाँ तक निर्णायक है, यह केवल उम्मी सत्य निरूपण हो सकता है जब अन्य विद्वान भी उसकी परीक्षा कर लें और प्राचीन लेखियों के विशेषतः कागज, रोथपाई, लेखन-पद्धति आदि की विस्तृत परीक्षा द्वारा किसी एक निष्कर्ष पर पहुँच जायें। ऐसे निर्णय के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। हाँ, अंतरंग की भी परीक्षा डा० माताप्रसाद गुप्त ने की है, वह आश्चर्य ध्यान देने योग्य है। इन अंतरंग परीक्षा का आधार केवल एक पुस्तक (रोधी) पं० मालतीधर चतुर्वेदी की 'रत्नानली चरित' है जो सं० १८२६ की रचना है। इसमें तुलसीदास के अंतरंग सम्बन्धी तीन विषयों मिलती हैं—विवाह-विधि

(१६१०), द्विरागमन-तिथि (१६१६), और गृहत्याग-तिथि (१६२७)।
 वे १६१२—१६२७ तक के १५ वर्षों के कवि-जीवन के सम्बन्ध में शका
 उठाते हैं—

१. 'मैंने कवि की रचनाओं की तिथियाँ निर्धारित करने का जो
 प्रयत्न किया है उसमें मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि उपर्युक्त पन्द्रह
 वर्षों के भीतर कवि ने चार ग्रन्थों की रचना की होगी; 'रामललानहङ्गू',
 'जानकी मंगल', 'रामाशाप्रश्न' और 'वैराग्य सदीपनी' इन चार ग्रन्थों
 में से केवल वैराग्य सदीपनी की प्रामाणिकता के विषय में कुछ संदेह
 है। सोरों की किसी भी सामग्री में इन तीन में से किसी भी रचना का
 उल्लेख नहीं होता है।

२—'मानस' ऐसी प्रशस्त और प्रौढ़ रचना के लिए उसकी भाषा
 पर अधिकार प्राप्त करने और शैली में अभ्यस्त होने में कुल चार ही
 वर्ष—या कदाचित् उससे कम लगे होंगे, क्योंकि गृहत्याग की तिथि
 सं० १६२७ कही गई है, और वह भी सोरोंपक्ष वालों के बधनानुसार—
 इस पर सदेहा विश्वास नहीं होता।

३—'रामाशाप्रश्न'(सं० १६२७) में कुछ ऐसे उल्लेख मिलते
 हैं जो इस सामग्री की प्रामाणिकता पर अविश्वास प्रगट करते हैं।

(१) रामाशाप्रश्न की रचना काशी-निवासी गंगाराम ज्योतिषी
 के लिए हुई—काशी में ही। इसकी भाषा भी अवधी है, अतः यह
 अवधी प्रान्त या काशी में ही रचा गया होगा। पर काशी-निवास या
 काशी-यात्रा तक का कोई उल्लेख सोरों सं० १६२७ तक की जीवन
 सामग्री में नहीं होता।

(२) चित्रकूट के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख रामाशाप्रश्न में आते
 हैं। उनसे कवि के बार-बार चित्रकूट-सेवन का आग्रह स्पष्ट है, अतः
 कवि इन दोरों की रचना के पूर्व कई बार चित्रकूट गया होगा।
 गृहत्याग के पूर्व किसी भी ऐसी यात्रा का उल्लेख सोरोंवाली

में नहीं होता। इसके विपरीत सं० १६२२ से सं० १६२७ तक निरन्तर विषयान्तरण रहता है।

(१) रामाशाप्रश्न के अध्ययन से हम इस निश्चय पर पहुँचते हैं कि उसकी रचना तिथि (सं० १६२१) के पूर्व ही उन्होंने अपने जीवन की भारा बदल दी थी।”

परन्तु इस सारी समीक्षा के बाद भी वह इस नवीन सामग्री की संमोहन शक्ति से प्रभावित हो हो गये हैं और उसके आधार पर कवि के प्रारम्भिक जीवन को अपनी पुस्तक में स्थान देते हैं यद्यपि अन्त में यह लिखना भी नहीं भूले हैं—

“हमें कितनी प्रसन्नता होती यदि इस सपन्न और रोचक कर् को हम बिना किसी खटके के महाकवि के जीवन-वृत्त में स्थान सकते।”

डा० माताप्रसाद के सदेहों का कुछ निराकरण कॉकरोली डा प्राप्त ‘अष्टाध्याप’ के अध्ययन से हो सकता है। उससे यह स्पष्ट है नन्ददास १६०७ में वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित हुए जब वे सुरदास के पास गये, उन्होंने उनके लिए ‘साहित्य-लहरी’ की रचना की। इससे एक वर्ष पहले १६०६ में वे अवश्य काशी में थे जहाँ तुलसीदास भी थे। इससे स्पष्ट है कि तुलसीदास ‘रामाशाप्रश्न’ की रचना (१६२१) से बहुत पहले ही काशी पहुँच गये थे और यदि यह सत्य है तो राम-चरितमानस की रचना (सं० १६३१) तक उन्होंने अवधो माया का अन्धका अध्ययन कर लिया होगा और उसमें छोटे-छोटे वे तीन-चार ग्रन्थ भी रच चुके होंगे जिन्हें डा० गुप्त तुलसीदास की कृति मानते हैं। तुलसीदास का जन्म सम्वत् १५८८ है (दे० तुलसीदास, पृ० ११०-१११)। इस प्रकार १६०६ के काशीवास के समय तुलसी की आयु १६ वर्ष की रही होती। हो सकता है तुलसीदास काशी में पौराणिक वृत्ति करने गये हों। इसके अनन्तर सं० १६१२ में या पहले वे अपनी जन्म-भूमि लौट आयें हों और बाद में कुछ लम्बे कालों के लिए

अयोध्या, काशी, विषकूट कथावृत्ति करते रहे हों। पीरे-परे वैराग्य-वृत्ति ब्रह्मणे पर उन्होंने संवत् १६२१ में राम-हामरुन और वैराग्य-सदोपनी की रचना की होगी। 'वार्ता' के अध्ययन से पता चलता है कि ये १६२४ में ब्रह्म आए। तब तक उन्होंने रामचरितमानस की रचना अक्षर्य नहीं की थी, परन्तु प्रसिद्ध मर्यादावादी रामभक्त अक्षर्य थे। बाद को १६२७ में पानी के व्यंग-वचनों से उन्हें एकाएक वैराग्य दृढ़ हो गया हो और ये काशी चले गये हों, जहाँ उन्होंने 'रामचरितमानस' (सं० १६-१) लिखा और रामभक्ति का प्रचार किया।

आधुनिक काल में नन्ददास के सम्बन्ध में विशेष खोज हुई है। परन्तु इस खोज को शुरू हुए अभी अर्धशताब्दी दिन नहीं हुए। शिवसिंह सरोज (शिवसिंह संग्रह), में नन्ददास का कोई वृत्तान्त नहीं दिया गया है। केवल छोट्टा-सा नोट है—“नन्ददास ब्राह्मण रामपुर-निवासी विद्वत्तनाथ के शिष्य। सं० १६८५ में उरय। इनकी गणना अष्टदास में की गई है।”

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने उत्तर भक्तमाल छाप्य २० में नन्ददास के तुलसीदास के साथ भावत्व का परस्पर बार उल्लेख किया है—

तुलसीदास के अनुज सदा विद्वल-व्यचारी
अतरंग हरि सदा, नित्य जेहि प्रिय गिरिधारी
भाषा में भागवत रची अति सरस मुहाड़े
दुख आगे द्विज कथन सुनत चल माहि दुवाड़े
पवाध्यायी हठि करि राखी, तब मुकवर द्विज भवहरत
भी नन्ददास रस-रास-रत, प्राण तज्यो सुधि सो करत

इससे स्पष्ट है कि भारतेन्दु के जीवन-काल (१८५०-१८८५) में इस प्रकार की जन-श्रुति पूर्व में भी थी कि तुलसीदास नन्ददास के भाई हैं।

(२) तुलसीदास और नन्ददास—श्री रामचन्द्र विद्यार्थी, 'विशाल भारत', अगस्त १९३६

(३) तुलसी-स्मृति श्रृंख (सनाढ्य जीवन) सितम्बर १९३६—
सम्पादक पं० गोविन्दवल्लभ भट्ट, पं० भद्रदत्त शर्मा, पं० प्रभुदयाल शर्मा।

(४) दोहा रत्नावली—सम्पादक पं० प्रभुदयाल शर्मा, इटावा १९३६

(५) तुलसीदास और नन्ददास के जीवन पर नया प्रकाश,
भा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दुस्तानी, १९३६

(६) नन्ददास—श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा। नागरी प्रचारिणी
पत्रिका, माघ १९३६ वि०।

(७) कुंडू प्राचीन 'वस्तुएँ'—पं० रामदत्त भारद्वाज, 'माधुरी',
१९४०। इसमें 'भ्रमरगीत' की पुष्पिका आदि पहली बार आई है।

(८) वर्षवंच और वर्षफल—पं० रामदत्त भारद्वाज, 'माधुरी',
अगस्त १९४०

(९) सौरों से प्राप्त गोश्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त से सम्बन्ध
रखनेवाली सामग्री की सहिरंग परीक्षा—माताप्रसाद गुप्त, 'सम्मेलन
पत्रिका', अगस्त सितम्बर १९४०

(१०) महाकवि नन्ददास का जीवन-चरित्र— श्री दीनदयालु गुप्त
'हिन्दुस्तानी', जनवरी १९४१

(११) मुरलीधर चतुर्वेदी कृत रत्नावली चरित—पं० रामदत्त
भारद्वाज (नवीन भारत, तुलसी श्रृंख, मार्च १९४१)

(१२) दोहा रत्नावली (उपलब्ध प्रतियों का पाठांतर-सहित
सम्पादन)—पं० रामदत्त भारद्वाज (वही)

(१३) सन् १९१२ ई० में डा० धीरेन्द्र वर्मा, अप्पच्च हिन्दी
विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय ने काशीर से स० १९१० में प्रकाशित

८४ और २५२ वार्ताओं के आधार पर अष्टद्वय कवियों की वार्ताओं का 'अष्टद्वय' नाम से संकलन किया जो रामनारायणलाल, प्रयाग ने प्रकाशित किया।

(१४) सं० १९९६ में काँकरोली से "प्राचीन वार्ता-दृश्य" प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इसमें गो० हरिरायजी के 'भावप्रकाश' (सं० १६४७—सं० १६७२) की सूचना मिली। इस ग्रंथ में पुष्टिमार्गीय भक्तों के वृत्तान्त कुछ विशेष सूचना के साथ दिये गये हैं।

(१५) सं० १९९८ में द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ। इसमें अष्टद्वय के कवियों (अष्ट सत्ताओं) का ही वृत्तान्त है। इसके सम्पादक भी द्वारिकादास जी हैं। इसमें गो० हरिरायजी कृत भाव-प्रकाश के साथ-साथ अष्टद्वय की वार्ता है जिसका आधार सं० १७५२ की 'अष्ट सत्तान की वार्ता' ग्रंथ है। 'अष्टसत्ता तथा' '८४ वार्ता' की सं० १६९७ की प्रतिलिपि काँकरोली में विद्यमान है परन्तु उसे प्रकाश में नहीं लाया गया है। इस द्वितीय भाग की गुजराती प्रस्ताव— भी कण्ठमणि शास्त्री ने बड़ी विद्वत्ता-पूर्वक लिखी है। इससे नन्ददास और एरदास के सम्बन्ध और नन्ददास के मौलिक चरित्र पर प्रकाश पड़ता है।

इस आधुनिक खोज-सामग्री और नन्ददास पर आलोचना आदि का प्रकाशन के इतिहास से यह स्पष्ट हो जायगा कि नवीन सामग्री की उसके आधार पर लिखे हुए निबन्ध १९३८ ई० से हमारे सामने आते हैं। इस तरह नन्ददास की नवीन खोजें अति आधुनिक हैं और उन पर विद्वानों ने निर्णयात्मक सम्मति नहीं दी है। खोज-सामग्री तीन केन्द्रों में मिली है—

(१) सोरो, जिला पटना, और जिला अलीगढ़ (२) काँकरोली, विद्या विभाग (३) बब, मधुरा।

परन्तु पाँडरोली और ब्रज-मथुरा की सारी उपलब्ध याँ प्राप्त सामग्री अभी प्रकाशित होकर हमारे सामने नहीं आई है। सम्भव है विशेष खोज से काँकरोली और ब्रज-मथुरा केन्द्रों में और भी सामग्री प्राप्त हो और कवि के जीवन-वृत्त के निर्णय में सहायक हो। काँकरोली से प्रकाशित वार्ता-रहस्य द्वितीय भाग में संस्कृत की वार्ता का भी उल्लेख है जिसका कुछ भाग पहले भाग के साथ प्रकाशित भी हुआ है, परन्तु बताया यह गया है कि इसमें सारे अष्टद्वय कवियों की वार्ताएँ प्राप्त नहीं हो सकी हैं, शायद नष्ट हो गई हैं, अतः उन्हें नहीं दिया जाता। परन्तु पता नहीं जो प्राप्त है सम्पादन में उनसे किसी प्रकार का सहारा लिया गया है, या नहीं। यह आशा प्रकट की गई है कि शायद इस संस्कृत वार्ता की और कोई प्रति प्राप्त हो जाय। प्राप्त सारी सामग्री को एक सूत्र में बाँधना कोई कठिन काम नहीं है, यदि

(१) हम बाबा वेनीमाधवदास के उल्लेखों को सज्जत सिद्ध कर अयोग्य मान लें।

(२) यदि हम नाभादास के तुलसीदास-नन्ददास का सम्बन्ध न लिखने की कुछ समझ में आनेवाली व्याख्या कर सकें। हमने अन्वेषण देखा है कि मूल गुसाईं चरित्र की प्रामाणिकता कई विद्वानों ने अस्िद्ध कर दी है, अतः इस सामग्री का एक प्रकार निराकरण हो ही जाता है। रही नाभादास की सामग्री—हम बता चुके हैं, कि यह सामग्री और इसकी टीकाएँ नन्ददास के जीवन-वृत्त के लिए एक श्रेणी में आती है, वार्ता आदि की अन्य सामग्री दूसरी श्रेणी में। हो सकता है, नाभादास ने यह समझा हो कि नन्ददास से तुलसीदास का सम्बन्ध दिखाने और फिर उन्हें कृष्ण-भक्त बहने से तुलसीदास की महत्ता में कमी आ जायगी कि इनके भाई कृष्ण-भक्त हुए। या चन्द्रहास भी भक्त हों, और नाभादास से परिचित हों, और इस परिचय के आग्रह से नाभादास ने उनका नाम लेना अच्छा समझा हो। नीचे हम शेष समस्त सामग्री के आधार पर नन्ददास के जीवन-वृत्त का निर्माण करेंगे, परन्तु

जन्म-तिथि—ऊपर हमने नन्ददास के जीवन के सम्बन्ध में विशद विचार किया है। अब हमें यह देखना है कि इस नन्ददास के जन्म, मृत्यु आदि के सम्बन्ध में किन निश्चित सिद्धान्तों पर पहुँच सकते हैं। श्री दीनदयालु गुप्त एम० ए०, एल-एल० बी० ने अनुमान से सं० १५६४ में नन्ददास की जन्म-तिथि मानी है। श्री द्वारकादास (कॉकरोली) का अनुमान है कि यह जन्म संवत् १५६० है। नन्ददास के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में अभी हमें एक ही निश्चित तिथि प्राप्त हुई है। यह तिथि १६०७ में साहित्य-लहरी (सूरदास) की रचना-तिथि है। 'नन्दनन्दनदास हित साहित्य लहरी कीर्ण'। इस तिथि से कुछ पहले ही नन्ददास ने गुसाईंजीसे दीक्षा ली होगी। उस समय वे वयस्क अवस्था में होंगे। जो हो, जन्म-तिथि का केवल अनुमान ही हो सकता है। श्री द्वारकादास की तिथि के हिसाब से चत्राणी से प्रेम करने के समय वे १६ वर्ष के युवा होंगे, परन्तु श्री गुप्तजी के हिसाब से उनकी अवस्था उस समय २३-२४ वर्ष की होगी। रसिकता का विशेष विचार १६ वर्ष की आयु के बाद ही होता है—यदि वे काफ़ी वयस्क नहीं होते, तो झंझी को सम्भीतापूर्वक उन पर विचार न करना होता। तब तक उन्होंने रामोपासना की थी और कदाचित् राम-भक्ति-पूर्ण कुछ पद भी रचे थे। 'वार्ता' में स्पष्ट है कि वे उस समय कविता भी करते थे, गाते भी सुन्दर थे। अतः इस सब के लिए हमें यह निश्चित रूप से मानना होता है कि वे यौवन की सीढ़ी पर काफ़ी दूर तक चढ़ गये थे।

जाति—सं० १६६० की "गुसाईंजी के चार सेवकन की वार्ता" से पता चलता है कि वे सनाथ्य ब्राह्मण थे। इसमें संदेह करने का कोई कारण नहीं है। कृष्णदास के प्रबंधों और अन्य उल्लेखों से भी इस निर्णय की सत्यता सिद्ध होती है।

शारणागति समय—श्री दीनदयालु गुप्त के अनुसार नन्ददास का शारणागति समय सं० १६२८ है और द्वारकादास कॉकरोली

सं० का प्रयोग इन सब संगों में विशेष अर्थ हुआ है। इन सबके विषय विगद है और विगद समय के मंगलान के लिए ही इनकी रचना हुई है। इस प्रकार नन्ददास के इन प्रौढ़तम संगों के रचनाकाल के दिग्गज में, हम दो भागों में बाँट सकते हैं।

१—१६०४ में १६३३ या कुछ बाद तक लिखे ग्रंथ—इवान मगाई, भैयागीन, रामपंचाध्यायी, मिद्वान्त पंचाध्यायी।

२—१६३३ या कुछ बाद शुरू होकर जीवन के अन्त के लिखे ग्रंथ—रूपमंत्ररी, विगदमंत्ररी, दशमस्कन्ध, रुक्मिणी मंगल।

मृत्यु—जीवन-तिथि की भाँति कवि की मृत्यु-तिथि भी अनुमानित ही है। वार्ता से पता लगता है कि नन्ददास की मृत्यु अक्टूबर और बीरबल के समकाल हुई। बीरबल की मृत्यु सं० १६४८ में हुई। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४७ से पहले हुई होगी। वार्ता से यह भी पता लगता है कि उनकी मृत्यु के समय गुजराई और विठ्ठलनाथ जीवित थे। गोन्वामीजी का गोलोड्वास सं० १६४२ में हुआ। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४२ से ही पहले घटित हुई होगी। बा० दीनदयालु गुप्त ने अनुमान किया है कि कदाचित् मृत्यु-तिथि १६४० है। कदाचित् इसी समय अकबर बीरबल के साथ ब्रज में आया था।

मृत्युस्थान—वार्ता के अनुसार उनकी मृत्यु मानवीगंगा पर ही हुई वहाँ उनका स्थायी निवास था।

रचनाएँ

जनशायर्य में नन्ददास की दो रचनाएँ ही प्रसिद्ध हैं—भँवरगीत और रासचंदाप्यायी, परन्तु प्राचीन लेखकों के उल्लेखों और आधुनिक स्तोत्रों के फलस्वरूप हमें अब तक उनके ३० ग्रन्थों का पता लग सका है—१ पंचाध्यायी, २ नाममंजरी, ३ अनेकार्थ मञ्जरी, ४ रुक्मिणी मंगल, ५ भँवरगीत, ६ मुदामाचरित्र, ७ विरहमंजरी, ८ प्रबोधचन्द्रोदय माटक, ९ गोवर्द्धनलीला, १० दशमस्कन्ध, ११ रासमञ्जरी, १२ रसमञ्जरी १३ रूपमञ्जरी, १४ मानमञ्जरी, १५ दानलीला, १६ मानलीला, १७ दितोपदेश^१, १८ शानमञ्जरी, १९ नाम-चिन्तामणि-माला, २० नासित पुराण, २१ श्याम सगर्द, २२ विशानार्य प्रकाशिका^२ २३ सिद्धान्त पंचाध्यायी^३, २४ खोगलीला, २५ फूलमञ्जरी, २६ रानी मंगी, २७ कृष्ण-मंगल, २८ रासलीला^४, २९ बाँसुरी लीला^५, ३० अर्थचन्द्रोदय^६ ।

१ हिन्दुस्तानी भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५ (काशी)

२ माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तान (१८८६ प्रिबर्सन)

३ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय संस्करण १९२६)

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल १९४०)

५ नागरी-प्रचारणी-सभा की खोज रिपोर्ट

६ श्री द्वारकेश पुस्तकालय, कॉन्रोली

७ 'नन्ददास' भूमिका पृ० २०—ये दो छोटी प्रकाशित पुस्तकें हैं जिनकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हुई हैं और परीक्षा नहीं हो सकी है ।

शब्द का प्रयोग इन सब ग्रंथों में विशेष अर्थ हुआ है। इन सबका विषय विवाह है और विवाह समय के मंगलगान के लिए ही रचना हुई है। इस प्रकार नन्ददास के इन प्रौढ़तम ग्रंथों के रचना के दिग्गम से, हम दो भागों में बाँट सकते हैं।

१—१६२४ से १६३१ या कुछ बाद तक लिखे ग्रंथ—रथान सगार्डे, भँवरगीत, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त-पंचाध्यायी।

२—१६३१ या कुछ बाद शुरू होकर जीवन के अन्त के लिए ग्रंथ—रूपमंजरी, विरहमंजरी, दशमस्कंध, रुचिमणी मंगल।

मृत्यु—जीवन-तिथि की भाँति कवि की मृत्यु-तिथि भी अनुमानित ही है। वार्ता से पता लगता है कि नन्ददास की मृत्यु अष्टर और बीरबल के समकक्ष हुई। बीरबल की मृत्यु सं० १६४८ में हुई। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४७ से पहले हुई होगी। वार्ता से यह भी पता लगता है कि उनकी मृत्यु के समय गुमार्डे' थी विठ्ठलनाथ कीरित थे। गोस्वामीजी का गोलोड्यास सं० १६४२ में हुआ। अतः नन्ददास की मृत्यु सं० १६४२ से ही पहले घटित हुई होगी। का० शीनदयालु गुप्त ने अनुमान किया है कि कदाचित् मृत्यु-तिथि १६४० है। कदाचित् इसी समय अकबर बीरबल के साथ ब्रज में आया था।

मृत्युस्थान—वार्ता के अनुसार उनकी मृत्यु मानसी-गंगा पर ही हुई वहाँ उनका स्थायी निवास था।

रचनाएँ

जनसाधारण में नन्ददास की दो रचनाएँ ही प्रसिद्ध हैं—भँवरगीत और रासरांघाष्यायी, परन्तु प्राचीन लेखकों के उल्लेखों और आधुनिक खोजों के फलस्वरूप हमें अब तक उनके ३० ग्रन्थों का पता लग सका है—१ पचाष्यायी, २ नाममंजरी, ३ अनेकार्थ मञ्जरी, ४ रुक्मिणी मंगल, ५ भँवरगीत, ६ सुदामाचरित्र, ७ विरहमंजरी, ८ प्रबोधचन्द्रोदय भाटक, ९ गोवर्द्धनलीला, १० दशमस्कन्ध, ११ रासमञ्जरी, १२ रसमञ्जरी १३ रूपमञ्जरी, १४ मानमंजरी, १५ दानलीला, १६ मानलीला, १७ हितोपदेश^१, १८ ज्ञानमंजरी, १९ नाम-चिन्तामणि-माला, २० नासिरत पुराण, २१ श्याम सगाई, २२ विज्ञानार्थ प्रकाशिका^२ २३ सिद्धान्त पंचाष्यायी^३, २४ जोगलीला, २५ फूलमंजरी, २६ रानी भंगौ, २७ कृष्ण-मंगल, २८ रासलीला^४, २९ बाँसुरी लीला^५, ३० अर्धचन्द्रोदय^६ ।

१ हिन्दुरतानो भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५ (काशी)

२ माडर्न वर्निक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दोस्तान (१८८६ प्रिदर्थन)

३ मिश्रबन्धु विनोद (द्वितीय संस्करण १९२६)

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास (पं० रामचन्द्र शुक्ल १९४०)

५ नागरी-प्रचारणी-सभा की खोज रिपोर्ट

६ श्री द्वारवेश पुस्तकालय, काँकरोली

७ 'नन्ददास' भूमिका पृ० २०—ये ही छोटी प्रकाशित पुस्तकें हैं जिनकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हुई हैं और परीक्षा नहीं हो सकी है ।

इन ग्रंथों में से ७ ग्रंथ अप्राप्य हैं—प्रबोधचन्द्रोदय मञ्जरी, मानलीला, मानमञ्जरी, विज्ञानार्थ प्रकाशिका, और अर्थचन्द्रोदय। अतः साभंगी के अभाव में इनके किसी निरुध्य पर नहीं पहुँच सकते। “नन्ददास” के अनुसार नाममञ्जरी, मानमञ्जरी और नाम-चिन्तामणि-मैं एक ही ग्रंथ के तीन नाम हैं।^१ दानलीला, हितोपदेश लीला को उन्होंने किन्हीं अन्य अप्रसिद्ध नन्ददास की कृति और जोगलीला का उदयनाथ कवीन्द्र की रचना प्रमाणित कि कूलमञ्जरी, रानी भंगौ और कृष्णमंगल बहुत ही छोटी रचन अंतिम रचना तो एक ही पद है। इनके सम्बन्ध में सम्पादक अति है। शेष रचनाओं में से भी सुशामाचरित और नाभिकेत पुर सम्बन्ध में उन्हें सदेह है। इस प्रकार प्रामाणिक रचनाएँ रह जाते हैं—वचमञ्जरी (रूपमञ्जरी, इयाम सगाई, विरहमः रममञ्जरी, मानमञ्जरी, अनेकार्थ मञ्जरी), भँवरगीत, रासचंदाव्या सिद्धान्त पंचांगयो, दशमस्कंध।

इन्हीं ग्रंथों का सम्पादित संस्करण हमें प्राप्त है, जिसे हमने अत्यन्त इस अध्यायन का आधार बनाया है।

इस सज्जित ग्रंथ निष्पत्ति बाद हम नन्ददास की रचनाओं का विस्तृत परिचय देंगे।

१ - वचमञ्जरी

नन्ददास के पाँच ‘मञ्जरी’ ग्रंथों को हम एक साथ ‘वचमञ्जरी’ शीर्षक के नीचे एक मकन हैं। ये ग्रंथ हैं—रूपमञ्जरी, विरहमञ्जरी,

१ ‘नन्ददास’ पृ० २० भूमिका

२ वहा

३ वहा पृ० २६

४ वहा पृ० ४०

५ वहा

रसमंजरी, मानमंजरी और अनेकार्थमंजरी। 'मंजरी' शब्द नन्ददास को विशेष प्रिय लगता है। जीवनवृत्त लिखते समय हमने उनकी एक रसिक मित्र 'रूपमंजरी' के सम्बन्ध में लिखा है। कदाचित् इसी वैष्णव महिला के आग्रह से और उससे प्रभावित हो नन्ददास ने अपनी अधिकांश रचनाएँ की हैं। अतः ग्रन्थों का नाम देते हुए उन्होंने उन्हें उस 'अति विचित्र' 'रसिकमित्र' से सम्बन्धित कर दिया है।

इन 'मंजरी'-ग्रन्थों में सबसे महत्त्वपूर्ण 'रूपमंजरी' ही है यद्यपि रसमंजरी और विरहमंजरी भी हमें उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्तों को समझने में सहायक होते हैं। रूपमंजरी में साहित्यिकता की माना विशेष है। अनेकार्थमंजरी और नाममंजरी कोप ग्रन्थ हैं। साहित्य और धर्म किसी की भी दृष्टि से उनका विशेष महत्त्व नहीं है।

रूपमंजरी में एक बड़ी भूमिका के बाद कवि अपनी कथा आरम्भ करता है! इस भूमिका का उपयोग हमने अन्वय किया है। यहाँ हम 'रूपमंजरी' की कथा-मात्र से पाठकों को परिचित करेंगे। धर्मवीर नाम का एक राजा था। 'रूपमंजरी' नाम की उसकी एक सुन्दर कन्या थी। जब वह ब्याहने योग्य हुई तो माता-पिता को चिन्ता हुई और उन्होंने एक विप्र को बुलाकर, प्राचीन प्रथा के अनुसार पर दूँदने का काम उसे सौंपा। जब विप्र महाशय चलने लगे तो स्पष्ट रूप से कह दिया—

अहो विप्र ! धन लोभ न कीजे
या लाइक नाइक की दीजे

(२२)

परन्तु लोभी विप्र ने एक 'कूर, कूर्प' कुँवर के घर टीका दे दिया। जब लौटने पर पिता-माता और सम्बन्धियों को यह बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ—परन्तु विवाह सम्पन्न हो गया। रूपमंजरी की एक शर्ती हनुमती थी। उसने यह सोचा कि यह रूप, यह

गो-दर, वह जीवन रेखा कर्षण प्राय । उमने उमें 'उ'
कराना चाहा, कर्षण—

रस में जो उग्रनि-रस आदी
रस भी अग्रनि कहत कवि नाही

उमें 'गिरिधर कंवा' का ध्यान हुआ, मोवा—

इक मुनियन सब लाइक नाइक
गिरिधर कंवर सदा मुष्यशइक
हो निय तिनदि कौन बिधि पाऊँ
कौ या कुंवरिदि ध्यान मिलाऊँ

(१७४-१७५)

एक दिन राजकुमारी अपनी सखी इन्दुमती के साथ
चित्रकारी में सो रही थी । वहाँ सपने में उमने एक अत्यन्त
नायक को देखा । जागने पर जब सखी ने उसकी संभ्रमावत
देखकर उससे कारण पूछा—

पूछति प्यार भरी सखि खाता, कदि बलि आब कहा इह बात
लोयन लौने, ललित ललौने, चलचलि हँसत है धानन कौने
देखति हौं बलि नहि तुव बसके, जस कहूँ प्रीतम रस के बसके
को अरु मुकूती बगत में, जो निरख्यौ इन नैन
मो द्विय जगत बुझाइ बलि, सोचि अमी रस बैन

कर दिया और उसे सूँघती हुई वह उसके साथ आगे बढ़ने लगी। वृ (इन्दुमती) आगे निकल गई। परन्तु अकेली पाकर भी रूपमंजरी को भय नहीं मालूम हुआ, वस्तुएँ परिचित-सी जान पड़ीं। इतने में—

इत तैं इक कोउ नव कितोर सौ
मनमथ हू के मन की चोर सौ
मुसकत-मुसकत मो टिंग आयौ
नैनन में बहु चौंध सौ लायौ
मोहिँ हँसि बूझन लाग्यौ तहाँ
इन्दुमती तेरी सहचरि कहाँ

(२२३-२२५)

रूपमंजरी ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु उस नायक ने एक फूल तोड़कर उसके गाल पर खेंच मारा। इसके आगे उसे सुख-दुःख नहीं रही। इन्दुमती ने उससे नायक के लक्षण जानना चाहे जिससे वह अपनी प्यारी सहेली का संदेश उस तक ले जाये और उसे लाये। रूपमंजरी ने कहा कि यह भी क्या सम्भव है कि स्वप्न का नायक सशरीर जाग्रतावस्था में प्राप्त हो जाये। इन्दुमती उपा-अनिच्छ का उदाहरण देकर आश्वासन देती है—

इक हुती ऊपा मेरी अलो
सपने काम कुँवरि सौ मिली
ऐसैं लख्युन औ लखि पाई
सौ खलि सौ सब बात जनाई
व चिपरेखा
मेखा
सै आई
न मिली

(२४१-२४४)

अन्त में रूपमञ्जरी नायक का रूप वर्णन करती है। ये नायक और कोई नहीं है, स्वयं कवि (नन्ददास) के आराध्य भगवान् श्यामन्दर (भीकृष्ण) हैं—

श्याम बरन तन अरु रस भीनौ, मरकत रस निचोह अरु कोनौ
 मोरचंद तिर अरु कलु लौनौ, मानौ अली टटावक टौनौ
 सोहत अरु कहै योंका भौही, मो मन जानै, कै पुनि हौ ही
 चुनि-चुनि सरद कमलदल लौजे, तिन कौ मोती पानिप दीवे
 ता मोहन के नैनन आगे, अलि ! तेऊ अति पीके लागे
 नासिक मोतो बगमग ओती, कहत जु मो मति होती छोती
 पीत बसन दुति परत न कही, दामिनी छी बहु धिर है रही
 लाल के लाल कलुनि लुधि ऐसी, लाल निचोह रंगी होइ दीधी
 मुरली हाथ मुहाई माई, बिन्हि बजाये राग पुचाई
 ताके रूप अनूप रस, कौरी ही मेरी अलि
 आत्र तनक मुधि परन दे, सवे कहौगी अलि

(१५६-१६५)

यह सुनकर इन्दुमती मूर्धित हो जाती है। जब यह मूर्च्छा से आगता है तो रूपमञ्जरी उसने कारण पूछता है—

मुपन की पानन क्यौ मुरभानी

(१७६)

इन्दुमती कहती है कि उसने यह सोचकर कि उसका रूप व्यर्थ जा रहा है एक देवता का मनाया था, उसी ने नायक रूप में लगने में दर्शन दिये हैं। रूपमञ्जरी के उस नायक का अज्ञान-पता पूछने पर इन्दुमती कहती है—

गङ्गुष गर्ड, बाई बनिहारो
 भगमगह लुधि जग ते ग्यारी
 नई की मोय नन्द बहु रावा
 वरा सरवरा एकई सावा

जमुमति रानी सब जग जानी
भाग-भरी, सुर-नरन बलानी
रमा, उमा-सी दासी बाकी
ठकुराहत, पा कहियै ताकी
तिनको सुत सो कँवर कन्दाई
ताकी छवि तू दिखि ही आई

(२८५ २६०)

धीरे-धीरे रूपमंजरी का प्रेमभाव बढ़ने लगा। इन्दुमती उसी में अपने प्रभु (गिरिधर) को पूजने लगी क्योंकि—

रूपमंजरी तिय कौ हियौ
गिरिधर अपनी आलय कियौ

(२६५)

इसके बाद कवि रूपमंजरी के प्रेमभाव के क्रमिक विकास का उपरिप्लव करता है और उसे क्रमशः हाव, भाव, देला की अवस्थाओं के भीतर से ले जाता हुआ इस परम प्रेमावस्था में परिप्लव करता है—

भूल विवास सबै भिट गई, खाई बछू गुरुन की लई
मन की गति पिय पै इक टारा, समुद मिली जैसे गंग की धारा
बमकि दै नैन नीर भरि आवै, पुनि सुखि जाइ, महा छवि पावै
पुलकि अग मुरमंग बनावै, बीच-बीच मुरभाई पावै
बिबरन तन अस देइ दिखाई, रूपबेलि जैसे धाम में आई
तनक बात बौ पिय पै पावै, सौ बिरियां सुनि तृपति न आवै

इस परमरति के फलस्वरूप—

रूपमंजरी तिय हियदि, पिय भल्लकै इमि आई
चंद्रकात मति मॉझ जिमि, परम चंद्र की भाई

(३१६)

सुबह रूपमंजरी जागती है तो उसके अलसाये श्रंगों और रति-
भिहों को देखकर सखी इन्दुमती जान लेती है कि इसे इष्ट घर की
प्राप्ति हो गई। परन्तु कवि ने स्वप्न की प्राप्ति और जाग्रति के अनुभव
में कोई भेद नहीं रखा है। सखी देखती है कि रूपमंजरी के गले में
जो माला है, वह उसकी नहीं है—

फूल माल जो रिय पै पाई
कुँवरि के कंठ चली सो आई

(५६६)

जब हम 'रूपमंजरी' की इस कथावस्तु को ध्यान से पढ़ते हैं, तो
हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि कथा के पीछे कवि के धार्मिक सिद्धान्त
द्विपे हुए हैं, इन्हीं सिद्धान्त रत्नों को प्रकाशित करने के लिए उसने
कथा को अपनाया है। स्वप्न रूपमंजरी की कथा कथा-दृष्टि से विशेष
मरत्त्वपूर्ण नहीं है। यही कारण है कि कथा में पात्रों का कोई विकास
नहीं हो पाया है। रूपमंजरी और इन्दुमती दोनों द्वायाचित्र मात्र रह
जाती हैं। कवि के ये सिद्धान्त क्या हैं, यह प्रश्न हो सकता है।

इस ग्रन्थ में वह एक प्रेमपद्धति का वर्णन कर रहा है। इस प्रेम-
पद्धति को उसने 'प्रभु की प्राप्ति' का एक मार्ग माना है—

पैरै कौ प्रभु के पकज-पग
कबिन अनेक प्रकार कहे मग
तिन में इह इक सुञ्छम रहे
हौ तिदि धलि जो इहि चलि चहे

(१७, १८)

रूपमंजरी की कथा को इस प्रेमपद्धति के प्रकाशन का साधन-मात्र
बनाया गया है। रूपमंजरी के वयस्क होने पर माता-पिता की चिन्ता
और ब्राह्मण के लोभ के कारण क्रूर और क्रूरूप पति को उसका ब्याहा
बाना—लौकिक कथा इतनी ही है। इस कथा को अगे इन्दुमती के
सहारे बढ़ाया गया है। बल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में सबसे प्रचलन

सिद्धान्त यह है कि भगवान का भेष्यतम भौन्दर्य प्रेम, माय, वैश्वर्य सब भगवान को हा मन्त्रिय होकर मायंक होता है। कृष्णदास अविष्कारो की कथा में इस पङ्क्ति है कि उन्होंने आगे में एक अरपन्त मुन्दरी वरगा को देगा, उसकी कला पर मुख हा ये उमे भगवान को आरोमने के लिए मायदंन से आवे। भौन्दर्य अब भगवान पर ही न चढ़ा, तो उसकी मायंकता क्या ? (देखिये २५२ वैष्णवों की पार्ता)। यही भाव सिद्धान्त रूप से रूपमन्त्री की कथा में गोंय दिया गया है। इन्दुमती गोचनी है कि यह रूप सफल कैसे हो (१६५) ? इसके लिए वह उपपति-रस को आयोबना करती है। तात्पर्य यह है कि भक्त को भगवान के प्रति ऐसा क्षीर प्रेम होना चाहिए जो प्रेमिका को उपपति के प्रति होता है। यही परकीया भाव की उपासना है। रूपमन्त्री के लिए कृष्ण उपपति ही हैं। परन्तु इस रस की प्राप्ति के लिए साधक या गुरु दोनों में से किसी को उद्योग तो करना ही पड़ेगा—

आकौ संमु समाधि लगावै, जोगी जन मन हू नहि आवै
निगमहि निपट अगम जो आही, अबल किहि बल पावै ताही
(१७६, १७७)

गुरु उद्योग करता है। इन्दुमती गुरु है। वह रूपमन्त्री को गिरिधरप्रिय के सम्बन्ध में बताती है और गोवर्द्धन आकर उस प्रतिमा दिखा लाती है। गुरु पहले प्रतिमा ही बतलाता है क्यों शालान्वाय से ही चन्द्रमा सहज ही दिखलाई पड़ जाता है। या प्रतिमा, तब सद्धम। परन्तु प्रतिमा दिखाने भर से प्रियतम के दर्श नहीं हो पाते। उसके लिए गुरु को प्रार्थना करनी होती है, हाय प कर शिष्य को सीढ़ी-सीढ़ी आगे बढ़ाना होता है। प्रगट तो वह होता है अपने अनुग्रह के साथ। यही "पुष्टि" सिद्धान्त है। भग की पुष्टि, उनकी अनुकंपा ही, भक्तों का पोषण करती है। इस नायक पहले आप ही रूपमन्त्री को दर्शन देते हैं। इस "पुष्टि"

के बाद भक्त का भगवान के प्रति विशेष आग्रह होता है, उनके प्रति उसकी जिज्ञासा बढ़ती चलती है। गुरुपद-रद पर उसकी जिज्ञासा को उकसाता है और उसे भगवान के सत्य स्वरूप और प्रेममय व्यक्तित्व से परिचित कराता है। वह स्वयं उसका सहचर है। भक्त को मार्ग पर लगाना ही उसके जीवन का ध्येय है, आनन्द है—

प्रेम बढ़ावहिं छिनहिं छिन, भूमि-भूमि उनहारि
 यौ मधि काढ़ी अग्नि-कन, कम-कम देत पजारि
 (२१६)

भगवान की अनुपम रसमयी मूर्ति से जब भक्त का हृदय परिचित हो जाता है, तब वह धन्य हो जाता है। परिस्थिति यह है कि

अनेक जन्म जोगी तप करे
 मरि पधि चपल चित्त कौ धरे
 सो चित्त ले उहि और चलाये
 तौ वह नाथ हाथ नहिं आये
 धरं गोपिन कौ सौ हित होई
 तब कहूँ जार पाइयै सोई

परन्तु भगवान की पुष्टि जब होती है तो, रूपमञ्जरी को जिष्ठ तरद, भक्त को यह निधि आप प्राप्त हो जाती है। धीरे-धीरे यह प्रेम-भाव गाढ़, गाढ़तर, गाढ़तम हो जाता है। रसशास्त्र की परिभाषा में भाव, हाव, हेल्ला, रति, यह क्रम है। यहाँ रस का आश्रय अलौकिक है, अतः ये प्रवृत्तियाँ भी अलौकिक हैं, इनमें 'साधारिकता' छूँदना ठीक नहीं है। रति-अवस्था पर पहुँच कर तीव्र विरहासक्ति की अनुभूति होती है। अंत में जब यह विरहासक्ति भी अंतिम दशा तन्मयासक्ति को पहुँच जाती है, तब भक्त को भगवान प्राप्त होते हैं—परन्तु वह भी भाव में। वल्लभ-सम्प्रदाय में भाव ही प्रधान है—भक्त भगवान को जाकर प्राप्त नहीं करता, वे उस भाव में ही मिलते हैं। इस भावमिलन

एतः एव ग्रन्थ में भूमिका में सब रसों को (जिसमें शृङ्गार रस भी है) भगवानोन्मुक्त कहकर नन्ददास ने नायिका भेद और नायक भेद करा है—

रूप प्रेम आनन्दरस, जो बहुत भग वि छादि
 सो सब गिरिधर देव की, निधरक बरनौ तादि

कृष्ण-श्याम में शृङ्गार की इतनी सुन्दर स्वीकारोक्ति, इतनी तेजस्विता के साथ, वही नहीं है। रूपमञ्जरी में शृङ्गार-शास्त्र का विस्तृत प्रयोग हुआ है, जैसे नायक-रूपवर्णन, नायिका-रूपवर्णन, वय-संदि, शौचनागम, पटशुद्ध-वर्णन, मुख नखोद्गा का वर्णन, अज्ञात दीवना, हाव, भाव, हेला, प्रीति आदि। नन्ददास और उसके पहले विद्यापति के काव्य में रसशास्त्र का विस्तार और बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है। नन्ददास ने इस प्रयोग को आगे ही नहीं बढ़ाया, इसका एक शास्त्र खड़ा कर दिया है। रूपमञ्जरी में रसमञ्जरी की कुछ चौपाइयाँ और कुछ दोहे रमान-रमान पर मिलते हैं। जान पड़ता है कि कवि ने एक ही छान्दो की दो रथानों पर उपयोग करने का विचार पहले ही कर लिया था और शायद दोनों रचनाएँ भी एक समय की हैं। हो सकता है कि रसमञ्जरी की रचना पहले हुई हो और रूपमञ्जरी लिखते समय उर्मग में जैने-जैने रसज्ञ आते गये, वैसे-वैसे दोहे-चौपाइयाँ रसमञ्जरी से ले लिये गये।

रसमञ्जरी पर लिखते हुए “नन्ददास” के सग्यादक उमाशंकर शुक्ल कहते हैं—“रसमञ्जरी भाषा-साहित्य में कदाचित् नायिका भेद का पहला ग्रंथ है। स्वयं कवि ने ‘रसमञ्जरी’ नामक किसी ग्रंथ के अनुसरण करने का उल्लेख किया है। संस्कृत कवि भानुदत्त मिश्र विरचित ‘रसमञ्जरी’ से नन्ददास की ‘रसमञ्जरी’ की तुलना करने पर दोनों में बहुत अधिक साम्य मिलता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि का अभिप्राय भानुदत्त के ग्रंथ का अनुसरण करने से ही है।

भा-नृदत्त ने विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गुण में दिये हैं और उनके उदाहरण रत्नोंकी में। लक्षणों की समीचीनता पर भी उन्होंने शर्षा देस से विशेषण किया है। नन्ददास ने इन विचारों को एकदम ही दिया है। उन्होंने प्रायः उदाहरणों को ही लिया है।" (भूमि, ५६३) भारत में नायिका भेद पर संस्कृत में बहुत पहले से चिन्ता आ रहा था और बहुत कुछ लिखा जा चुका था। सम्भव है कि संस्कृत में 'रसमंत्रि' (नन्ददास) से पहले का भी कोई भाषा नायिका भेद उपलब्ध हो जाय। नन्ददास के कुछ पदों में स्पष्टतः नायिकाओं का नाम आया है। सम्भव है, उन्होंने भी नायिका-भेद लिखने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह तो स्पष्ट है कि विद्यावति और जयदेव के समय में ही रसशास्त्र भक्तिशास्त्र को प्रीतिता दे रहा था और इन कवियों की रचनाओं में 'नायिकाभेद' मिल जाता है। नन्ददास की मरणावधि है कि उन्होंने स्पष्ट रूप में 'रस का अन्वयन भक्ति की दृष्टि से भी अनिवार्य है', इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। श्रुत्या बहती है— रसो मे वाः (यह रस है)। महलभाषा में एक बार फिर भगवान के रसरूप, आनन्दरूप का महत्त्व प्रोचित किया। उन्होंने गीतियों की कृष्णकैलि की आध्यात्मिक एवं भौतिक व्याख्या की और शृंगारभाव और देवभाव (अलौकिक मधुररसि) को एक जैसे बताने हुए भी इन प्रकार का भेद बतलाया जिस प्रकार का भेद मामगिद और जयगिद में होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि महलभाषा में मानकी पूजा और वाचस्पत्य भाव से सेवा के उपासक में, परन्तु उनके अनुभाव में जो मानवभाष्यायी और गोपीवचन की व्याख्या हुई भी, बार को विद्वजनाथ और अष्टादश के कवियों ने उते विशेष रूप में विनियमित किया। विद्वजनाथ गोरवामी ने भीगभाष्यक लिखकर भाषा को मानवभाषिक स्वरूप दी और 'शृंगार रस-मंत्रि' में शृंगाररस की धार्मिक भाषना में उपादेयता रीतिर की। नन्ददास ने वही भाषा 'रसमंत्रि' लिखकर किया। वही नहीं, उन्होंने अपने सिद्धान्तिक भाषा

ग्रंथ रूपमंजरी में अपनी रसमञ्जरी की पक्तियों का स्वतंत्र रूप से उपयोग किया है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से जो रस है, वही भक्तिशास्त्र की दृष्टि से अलौकिक भाव है। इसी सिद्धान्त के अनुसार नन्ददास ने भाव, हाव, हेला, रति को भक्तिभावना के विकास का क्रम भी स्वीकार किया है (दे० रूपमंजरी)। जो हो, रसमंजरी और रूपमंजरी में भाषा-साहित्य में पहली बार हम लौकिक रति और देवुरति का एकात्म स्थापित हुआ पाते हैं।

विरहमंजरी का आधार बारहमासा और मेघदूत हैं। मेघदूत में जिस प्रकार यक्ष मेघ को अपना दूत बनाकर उससे प्रियतमा के पास संदेश ले जाने का प्रस्ताव करता है, वैसे ही इस काव्य में विरहिणी ब्रजवाला चन्द्रमा को अपना दूत बनाती है—

परम प्रेम उच्छ्वलन कौं, बह्यौ जु तनमन मैन
 ब्रजवाला विरहिनी भई, कहति चन्द सौं बिन
 अहो चन्द ! रसकंद तुम, जात आदि उहि देस
 द्वारावति नैदनन्द सौं, कहियौ बलि सन्देश

(१-४)

इसके बाद नायिका प्रत्येक मास का नाम लेकर उसकी ऋतु आदि का वर्णन कर अपनी दशा बताती है और कृष्य से आने की प्रार्थना करती है, जैसे

चैत चलौ जिनि कंत, बार-बार पाँ परि कह्यौ
 निपट अखंत बसंत, मैन महा मीमंत जहँ

(४६)

आषट्ठ बलि बैसाल, दुख-निदरन, सुख-करन पिय
 उपत्री मन अभिलाख, बन-विहरन गिरिबरन संग

(६२)

इस भाव-वर्णन में कवि लोकगीतों के रूप में प्रचलित 'बारहमासा' से बहुत प्रभावित है। 'नरह' ने अपने काव्य 'बीहलरेव रासो' में

'बारहमासा' का राजमति के विधोय में उपयोग किया है। इसके बाद हम नन्ददस के काव्य में ही उसका उपयोग पाते हैं, यद्यपि लोक-साहित्य में बारहमासा का परापर प्रचुर स्थान रहा है। परन्तु 'विश्व-मंजरी' केवल चन्द्रचन्देश (चन्द्रचूड) और 'बारहमासा' तक ही सीमित नहीं है। उसमें एक कथा भी है यद्यपि कथासूत्र बहुत कम है। ब्रजवाला को ब्रजलीला की सुधि आती है जो निम्न है—

पट्टरूपी ब्रजलीला सुधि आई
जानी निम्न किगोर क्यदाई
सुपने कोउ सुख पावत दीगें
आगि परे सुख होत है तीगें
तब ही पाइ बजाई सुरली
मधुर-मधुर पंचम सुर सुखी

(१८८-१९०)

यह सुवती ब्रजवाला बधुदा मिथामे कि बहाने उस ओर चल देती है। निम्न ओर से सुरली की ध्वनि आती है। देखती है, मधुरा खिल लगाये, पाग परे, अद्भुत शक्ति बनाये पीरि पर लके है—

इच्छे प्राप्ति विपारे पावे
निम्न के सुख सर ही विपारये

(१९५)

उसको देखकर 'निम्न विप' भी हैं म दिवे, बर्षिक पर ती

'अंतरवासी सर के विप के'

(१९७)

यह कथासूत्र भी विश्व-सिद्धांत को प्रतिपादित करने के लिए ही गदा है। बर्ष 'विप' के लिए मेर कथा है—प्रपथ, बलवी, सुख, देवता। 'ब्रजवाला' की कथा में उसने देवता विप की है।
... कथा है। हमें ही यह "ब्रज की विप" (१००) बर्ष

है। पुष्टिमार्ग के धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार ब्रज की लीला नित्य है, कृष्ण नित्य किशोर है, तब देशान्तर विरह उपस्थित ही कैसे हो सकता है ! कवि 'देशान्तर विरह' की व्याख्या इस प्रकार करता है—

मुनि देशान्तर विरह-बिनोद, रसिक जनन मन बढ़वन मोद
नन्द-सुवन की लीला जित्ती, मथुरा द्वारापति बहु वित्ती
मुनिरत तदाकार है चाहिं, यह वियोग इहि विधि ब्रज माहिं
क्यों मनिकंठ बाँधि कै कोरे, बिसरे बन-वन दूँदत सोरे

(३४-३७)

यहाँ भी ब्रजवाला को द्वारापति लीला की मुधि आती है और वह आकुल हो जाती है—तब नन्दसुवन (अन्तर्यामी है) उसका भ्रम मिटा देते हैं और अपनी नित्य लीला का उसे आभास देते हैं। इस प्रकार 'ब्रज का विरह' वास्तव में संध्रम-मात्र है। ब्रज में विरह तो है ही नहीं, नित्य संयोग है। ब्रज की लीलाओं से जब भक्त दृष्टि हटा लेता है और कृष्ण को अन्य लीलाक्षेत्र में देखने लगता है, तो एक प्रकार का विरहाभास उसे हो जाता है।

हम बता चुके हैं कि मानमञ्जरी और अनेकार्थमञ्जरी साहित्य अथवा धर्म की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं है। वे कोप मात्र हैं। मान-मञ्जरी को पर्यायवाची शब्दों का कोप समझना चाहिये जो 'अमरकोष' के अनुसरण में लिखा गया है। भूमिका में कवि लिखता है—

गुंघनि नाना नाम की, 'अमरकोष' के भाद
मानवती के मान पर मिले अर्थ सब आद

(५)

विचित्रता यह है कि दोहे की पहली पंक्ति में पर्यायवाची शब्द है और दूसरी पंक्ति में राधा विकसित किया गया है। राधा मान आती है। उसे नन्दलाल आती है।

बातम्य के सदन सब, मानिक गच्च छवि देत
जहाँ तहाँ नर-नारि निज, भँड़े मुकि-मुकि लेत
रूपे की गोसाल तदँ.....
घबल नवल ऊँचे अटा, करत घटा सौ बात
दुति न कदि परे भवन की, सुर भूले दिलि मांति

(२६-२८)

वृषभानु के पेशव्यं का भी विचक्षण चित्रण किया गया है। मली वहाँ पहुँचती है जहाँ राधा 'दुग्धकैनसम सेत्र पर' बैठी है। फिर राधा के अंग-प्रसंग का वर्णन है। सली बड़ी देर तक उसका सौंदर्य ही देखती खड़ी रहती है (१४४), फिर डरती-डरती राधा के पास जाती है। राधा क्रोध से पूछती है—'कहाँ फिरती है, कुशल तो है। वह उसके सौंदर्य की प्रशंसा करती हुई कृष्ण की ओर उसकी अनुरक्ति बढ़ाती है। कहती है कि कृष्ण तो तेरा भ्रमंग-माय से काँते हैं। कृष्ण की प्रशंसा के बराने नन्ददास कृष्ण-सम्बन्धी-यत्नलभ सम्प्रदाय की मान्यताओं पर भी बड़ी चतुरता से प्रकाश डालते हैं (२१२-२२०)। इसके बाद राधा-मली का वाग्वातुपं दर्शनीय है। सली कहती है कि सॉफ़ि हो गई, अटवी में कृष्ण अकेले हैं, मान कर छोड़ वहाँ चल। वे बंधी में कद रहे हैं—हे प्रानेश्वरी, आओ। अति सर्वप्र भभी नरी होती। अन्त में राधा-मायन का मिलाप होता है। अन्त में नन्ददास की प्रार्थना—

जुगलकिशोर सदा बसहु, 'नन्ददास' के हीय

(५२८)

में प्रंय समाप्त होता है। इस प्रकार की योजना से प्रंय की सरलता बढ़ गई है।

अनेकार्थ मञ्जरी योगे शब्दों का कोण है त्रिनके अनेक अर्थ होते हैं। हमकी भूमिका में भी प्रंय को पारिच्छ पुट देने की योग्यता है—

एकै वायु अनेक द्वे जगमगात जग-पाम
 किमि बंचन तैं किचिनी, कवन. बुंदल नाम

(२)

इस संघ के भी कुछ दोहों में मानसङ्गी के ढंग पर कविता ही
 आसी या एक शरण में कुछ चर्म गिडाना करने की चेष्टा की गई है,
 यद्यपि जो कहा गया है, उसमें उस प्रकार गलतफहमी नहीं है, जिस प्रकार
 'मानसङ्गी' में ।

इन दोहों की रचनाओं के आशयन में यह पता चलता है कि
 मन्दाकार ने भाषा का अर्थहीन शब्दों में अर्थहीन किया था । यही कारण है
 कि उनकी भाषा-शैली का शीघ्र ही उनको अपना-पना अपनी पंक्ति ही और
 वह 'कविता' की प्रतिष्ठा प्राप्त कर लगे हैं । उनका शब्दों का प्रयोग
 आत्मन उपयुक्त और विविध है ।

२—रघुमन्मगाई

रघुमन्मगाई एक छोटा-सा कथा-संग्रह है । विषय नाम में ही स्पष्ट
 है । मन्दाकार ने भाषा के अर्थहीन शब्दों को और कृष्ण के भावपूर्ण
 का उसे अर्थ देने की एक कथा रघुमन्मगाई में लिखी है जो इस
 प्रकार है—

जिह दोहनी बानी गी ग्यागी

जिह विचरन हरि हेंते गिरिगि सुख, कोरन कोरनि बानी
 रघुमन्मगाई, हीं लखिबनि ही, एक की गते बानी
 और औरि सब बानी टारने, हरिलीं देतु दुहरी
 वह सुनिने बनिन हीं बानी, बानि बनी टारने
 मन्दाकार सब लखिबनि उर हीं, लखीं कुँवरी टारने
 * * * लखिबनि गिरिगि ग्यागी
 देहदु ग्यागी सुख बानी की, बहू हरि बानी ग्यागी

हम आगे आगि, यह गाड़ी, गरिनि वरी महाराई
गिर तै गई दोहनी दरिद्री, आगु रही सुरम्भाई
राम भुजंग करयो हम देखन, स्थावहु गुनी बुलाई
रोवति जननि कंठ लखानी, पूर राम गुन-गाई

× × × श्रीरे दया भई जिन मीतर, बोले गुनि नगर तै
पूर गाढ़ी गुन करि याके, मंत्र न लागत घर तै
चले सब गाढ़ी पड़ितार ।

नैकहुं नहि मन्त्र लागत, समुक्ति काहु न आइ ॥

बात भूमत संग रागिबनि, कही हमहि बुभाइ ।

× × पूर प्रभु श्री वेगि स्थावहु, बड़ी गाढ़ी रह ॥

नन्दमुवन गाढ़ी बुलावहु ।

कही हमारी मुनत न कोऊ, दुरत आहु ले आवहु ॥

ऐसी गुनी नही प्रभुवन कहूँ, हम जानति हैं नीकें ।

आइ आइ तो दुरत त्रिपावहि, नैकुं छुवत उठै कीकें ॥

देखौ घौ यह बात हमारी, एकहि मन्त्र त्रिवाये ।

नन्दमहर को सुत पूरज श्री, कैसेहुं ह्यौ लौ आवे ॥

× × वेगि चली त्रिय कुंवर कन्हारि ।

जा कारण तुम यह मन सोयी, सो त्रिय मदन मुजगम सारि ।

× × × वृषभानु श्री घरनि जगोमति पुकार्यौ ॥

पठे सुत काज श्री कहित हो लात्र तजि, पाइ परिके महरि करत आर्यौ ।

प्रात खरिकहि गई, आइ विद्वल भई, राधिका कुंवरि कहूँ डस्यौ कारौ ।

मुनी यह बात, मैं आई अतुरात, ह्यौ, गाढ़ी बहौ है सुत दुग्धारौ ।

× × × जमुमति कही, सुत आहु कन्हारि ।

कुंवरि त्रिवायै अतिहि भलाई ॥

× × हरि गाढ़ी तहाँ तब आवे ।

यह बानी वृषभानु-मुता मुनि, मन-मन हरप बदाये ।

× × रोवति महरि फिरति वितलानी ।

बार-बार लै कंठ लगावात, अतिहि सिधिल भई बानी ॥

नन्दसुवन कै पाइ परी लै, दौरि महरि तब आइ ।

व्याकुल भई लादिली मेरी, मोहन देहु जिवाइ ॥

कुछ पढ़ि पढ़ि कर, थंग परस कर, विष अपनौ लियौ भारि ॥

सूरदास प्रभु बड़े गाढ़ी, सिर पर गाढ़ूँ डारि ।

× × × लोचन दये कुँवरि उधारि ।

कुँवर देखयो नन्द कौ तब सकुची अग सम्हारि ॥

बात बृभक्ति जननि सौ री कहा है यह आज ।

मरत तैं तू बची प्यारी करति है कह लाज ॥

तब कहति तोहिं कारैं खाई कछु न रहि मुधि गात ।

सूरप्रभु तोहिं व्याह लीन्दी कही कुँवरि सौ मात ॥

(सूरसागर, ना० प्र० सभा, पृ० ८०२-८१२)

ज्ञान पद्धता है कि नन्ददास इस सामग्री से परिचित थे। उन्होंने इस पर एक स्वतन्त्र कथा-ग्रंथ रचने की सम्भावना देखी। फलस्वरूप श्यामसगाई की रचना हुई। एक दिन राधे कुँवरि नन्द के घर खेलने आईं। बभ्रुवति ने उसे देखकर मन में सोचा कि यदि यह कन्या श्याम के लिए बधू-रूप में प्राप्त हो, तो अच्छी जोड़ी मिले। उन्होंने एक ब्राह्मणी बुला कर उसे वृषभानु के यहाँ सन्देश देकर भेजा—

आइ कही वृषभान सौ, करियो बहु मनुहारि

यह कन्या मैं श्याम कौ, माँगौ गोद पठारि

कि छोरी सोइनी

बरसाने आकर ब्राह्मणी ने यह सन्देश पहुँचाया परन्तु कीर्ति (राधा की माता) ने इस सम्बन्ध से इन्कार किया—

कीर्ति उत्तर देयो, सुहो नहिं करी सगाई

एषी राधे कुँवरि, श्याम है अति चरकाई

मुनत सगाई राम खाल सब अंगनि क्ले
 नानक-भावन चले, प्रेमरस भे अनुभवे
 अमुमति रानी पर सगी, मोनन चौक दुगाइ
 बैठत बघाई नन्द के, 'मन्दराम' बलि धार
 कि बोरी सोइनी

राष्ट्र है कि कवि की दृष्टि केवल क्या पर है। विशेष साहित्यिकता का ध्यान उगे नहीं है। हाँ, यह पता चलता है कि भोड़े में क्यायूव के आधार पर मन्दराम अष्टमी छात्री इमारत खड़ी कर सकते थे। कल्पमन्जरीयदाय में राधा खड़ीया है। मूरदाय में राम में पहले उनके रिवाज की रीतना की है। मूरदाय के शिष्य मन्दराय और आगे बढ़कर पगाई भी बरा देते हैं।

३—भँवरगीत

भँवरगीत मन्दराम की एक बहुत प्रसिद्ध रचना है उसकी ही प्रसिद्ध, किन्ता मूरदाय का 'अमरगीत'। अमरदाय के ही कितने कवियों के 'अमर-गीत' उपलब्ध हैं और जैसे ही 'अमरगीत' लिखने की प्रथा हमारे समय तक खली आयी है।

'अमरगीत' की क्या का आधार भागवत दशमस्कन्ध अध्याय ५३में की क्या है। मन्दराय में कृष्ण द्वारा उदध के ब्रह्मराषा की आका, ब्रह्म-राषा, मन्दराषा के घर उनका बरागण, लंघितो का रूप देवका मधुम आदि प्रसंग लीह दिये हैं। उन्होने किन्ती क्या का आधार लिखा है, किन्ती क्या की ही हम यहाँ लुगना करते। भागवत में "इदम-लोक-मार्गः और अमरगीत" इस प्रकार है—

'इदमसी' हम जानती है कि आर हमारे ब्रह्मराष—नहीं, नहीं कृष्ण के पार्श्व है। उन्ही का लंघितो लेका यहाँ प्यारे है। आरके लंघितो में आरके भागवत विना को मुक्त देते के लिए आरके यहाँ देका

मान्य करने लगी। उनके हृदय में एक एक करके त्रिपती भी भूमिर्था बगती, इलाए बिना न होइती। वे आत्म विम्वृत होकर स्व गुणम लाभा को भी भूल गयीं और फूट फूट कर रोने लगी। एक गोरी को उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् भक्त्या के मिलने की सीला का उसी समय उठने देला कि पाप ही एक भौवा गुनगुना रहा है। उठने ऐसा छनभा मानो मुझे कटी हुई ममभक्त्य भक्त्या ने मनाने के लिए इसे भेजा हो। वह गोरी और से हम प्रकार कहने लगी।

गोरी ने कहा—मधुकर! तू करती का लगा है, हमलिए तू भी करती है। तू हमारे पैरो को मत छू। झुंठे प्रणय करके हमने अनुनय-विनय मत कर। हम देव रही हैं कि भीकृष्ण की जो बननाला हमारी सीनों के बलरपल के रररों से ममनी हुई है, उसका पीला-पंला कुंकुम सेरी मूँधो पर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुर्म से प्रेम नहीं करता, यहाँ से वहाँ उदा करता है। जैने तेरे स्वामी, देवा तू! मधुपति भीकृष्ण मधुग की मातिनी नायिकाओं को मनावा करे; उनका यह कुंकुम रूप कृपा-प्रसाध, जो यदुपशियों की सभा में उरदास करने योग्य है, अपने ही पाप रकरण। उमे तेरे द्वारा यहाँ भेजने की क्या आरश्यकता है। जैने तू बाला दे, वैते ही वे भी निवले। देव तो, उन्होंने हमें केवल एक बार—हाँ ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक मो मोहनी और परम मादक अधर मुषा विलाई थी और फिर हम भोभी-भाली मोरियों को छोड़कर वे यहाँ से चले गये। पता नहीं, मुकुमारी लक्ष्मी उनके चरण-कमलों की सेवा कैसे करती रहती है। अवश्य ही वे छैल-छुगैले भीकृष्ण की चिकनी-चिपुड़ी बातों में आ गई होगी। चित्तचोर ने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा। अरे भ्रमर! हम घन-वाहिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हम लोगों के सामने यदुवंधशिरोमणि श्रीकृष्ण का बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है? यह सब कला हम लोगों को

(७) उन्होंने किराण काल को बंध के समान द्विपकर बड़ी निर्दयता
 । मारा था । बेचारी शूर्यन्ता कामचठ उनके पास छापी थी, परन्तु
 उन्होंने अपनी स्त्री के बच होकर उस बेचारी के नाक-कान काट लिये
 और इस प्रकार उसे मरुत कर दिया । जाने दो उस समय की बात,
 तद्वत् के पर वामन के रूप में जन्म लेकर उन्होंने क्या किया ? बलि
 ने तो उनकी पूजा की, उनकी मुहूर्वांगी वस्तु दो और उन्होंने क्या
 किया ? उसकी पूजा प्रहृष्ट करके भी उसे बरुणपाठ से बांधकर
 गताल में डाल दिया । ठीक वैसा ही, जैसे कौशा बलि पाकर भी बलि
 देनेवाले को अपने जन्म साधियों के साथ मिलकर घेर लेता है और
 परेशान करता है । अन्धा, तो अब जाने दं; इमें कृष्ण से क्या,
 किसी भी बालो वस्तु से कोई प्रयोजन नहीं है । हम बालों की मित्रता
 से बात छाईं । परन्तु यदि नू पृह कहे कि 'अब ऐसी है बात तुम लोग
 उनकी चर्चा क्यों करती हो ? तो भ्रमर ! हम सब कहती हैं, एक बार
 जिसे उसका चरका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता ।
 ऐसी दशा में हम चाहने पर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकती ।
 क्या करें ! देख न, श्रीकृष्ण की लीला रूप अमृत का कुछ बूँद
 उसके बानों में पड़ जाती है, जो उसके एक कण का भी रमरवादन
 कर लेता है, उसके राग द्वेष आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं । संसार
 के सुख-दुःख उसके सामने से भाग लड़े जाते हैं । यहाँ तक कि बहुत
 से लोग अपनी दुःखमय—दुःख से सनी हुई पर-ग्रहस्थी छोड़कर
 अद्विजन हो जाते हैं, अपने पाप कुछ भी समझ-परिग्रह नहीं रखते,
 और पाँद्यों की तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते
 हैं, दीन-दुनिया से जाते रहते हैं । फिर भी श्रीकृष्ण की लीला-कथा
 छोड़ नहीं पाते । वास्तव में उसका रस, उसका चरका ऐसा ही है ।
 यही दशा हमारी हो रही है । जैसे कृष्णसार मृग की पानी भोली-
 भाली हरिनिर्वा बंध के सुमधुर गान का विरवाध कर लेती है, वैसे
 ही हम भोली-भाली गोपियों भी उस छलिया कृष्ण की मोटी-भीटी

गोपियों के एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो। श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी ध्वधा मिटाई है, हमारे संकट काटे हैं। गोविन्द, तुम गौश्री से बहुत प्रेम करते हो। क्या हम गीये नहीं हैं? तुम्हारा यह सारा गोकुल—त्रिलोकें बाल-बाल, माता-पिता, गौयें और हम गोपियाँ, सब कोई हैं—कुःख के अपार सागर में डूब रहा है। तुम इसे बचाओ, आयो, हमारी रक्षा करो ॥ १६-५२ ॥

श्री शुकदेवजी कहते हैं—त्रिप परीक्षित् । भगवान् श्रीकृष्ण का प्रिय सन्देश सुनकर गोपियों के विरह की ध्वधा शान्त हो गयी थी। वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूप में सर्वत्र स्थित समझ चुकी थी। अब वे बड़े प्रेम और आदर से उद्धवजी का सत्कार करने लगीं। उद्धवजी गोपियों की विरह-ध्वधा मिटाने के लिए कई महीनों तक वहाँ रहे।”

नन्ददास ने इस सारे प्रसंग को एक नये कलात्मक ढंग से उपस्थित किया है। 'सौष्टव' की दृष्टि से भँवरगीत की समझी को इस प्रकार रक्त का सक्त है—

(१) भूमिका—ऊषो कहते हैं कि श्याम ने उनके हाथ एक संदेर भेजा है। उसे कहने का अवसर उन्हें अब तक नहीं मिल सका था। अब वे उसे कहकर मधुपुरी लौट जाना चाहते हैं (१-१०)

(२) 'श्याम' का नाम सुनते हुए गोपियों की विह्वल प्रेम-दर (१०-१६) -

(३) गोपियाँ सत्कार कर उद्धव को बैठाती हैं और कुशल-च्छे पूछती हैं (१५-२०) -

(४) ऊषो कहते हैं कि श्रीकृष्ण मधुरा ने ब्रज आयेंगे (२०-२५)

(५) गोपियों की रूपावलि और मूवर्द्धा (२५-३०)

(६) ऊषो-गौरी-सम्वाद (३१-१४०) । एक पद में ऊषो का तूमरे में गोपियों का, इसी तरह सारा सम्वाद निर्गुण-सगुण, योग क प्रेम के द्रव्य पर आश्रित है।

“मगधान भीष्मण्य का विष उन्देश गुणकर गोविंदों के निरह को
 तथा शान्त हो गई थी। इन्द्रवातीत भगवान भीष्मण्य को अपने आत्म
 के रूप में सर्वत्र स्थित समस्त वृक्षों भी। अब ये बड़े प्रेम और आश्चर्य से
 उद्भवों का शरकर करने लगे।” (श्लो० ५३)

ऊँचों के मगधान भीष्मण्य पर मोघ करने और उनका मायात्म्य
 भ्रम दूर करने की कथा नन्ददास को मौलिक सुक्त है। भागवत तो ये कथा
 दत्ता ही कहती है—“यहां (मगधान) पदुंनकर उन्होंने मगधान भीष्मण्य
 को प्रणाम किया और उन्हें प्रकृतियों को प्रेम-मगधान भक्ति या उद्भव,
 प्रेमा उन्होंने देखा था, वह गुनाथा।” (श्लो० ६६)

हम प्रकार हम देखते हैं कि लवभगवती कथा नवीन ढंग में बहुत
 सुन्दर मौलिक प्रसंगों के साथ उपस्थित की गई है। यह मौलिकता कहीं
 नहीं है, और क्यों है, यह प्रश्न अनुभवत नहीं होगा। नन्ददास के भगव-
 तीय के भीष्म आचार हैं—

(१) निर्गुण पर मगुण्य की विषय का तर्कपूर्ण स्पष्टान ।

(२) योगमार्ग और ज्ञानमार्ग की निरालम्ब की योग्यता और इन
 पर प्रेममार्ग की विषय ।

(३) गोविंदों की रूपभक्ति और प्रेममार्गिक का विषय निरालम्ब ।
 भागवत में पहले और तीव्र निरालम्ब पर लिखा जा चुका है। परन्तु
 दूसरा विषय परिस्थिति-बन्ध है। गोवन्दानाम के योगमार्ग और भक्ति
 के ज्ञानमार्ग के प्रति अवस्था और इनका विशेष लक्ष्य है। भागवत में
 सभी मार्ग स्वीकार कर लिए गये हैं, क्योंकि प्रेममार्ग ही सर्वोत्कृष्ट माना
 गया है। पुष्टिमार्ग में परम प्रेम रसमय भीष्मण्य के आकार रूप लीला
 को ही प्रेमभावना उपादेय भी। हम प्रकार हम संघ पर भी मगधान्य
 की लक्ष्य पड़ी है। परन्तु हम लक्ष्य का एक दृष्टि स्थान पर और
 भी गहरा पाते हैं। पुष्टिमार्ग के वृक्ष तो निरालम्ब हैं, उनको
 नन्ददास भी निरालम्ब है, इसलिए गोविंदों का देहात्तर निरालम्ब

“भगवान् श्रीकृष्ण का प्रिय संदेश सुनकर गोपियों के विरह की व्यथा शान्त हो गई थी। इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्ण को अपने आत्मा के रूपमें सर्वत्र स्थित समझ चुकी थी। अब वे धड़े प्रेम और आदर से उद्वेगों का सत्कार करने लगीं।” (श्लो० ५३)

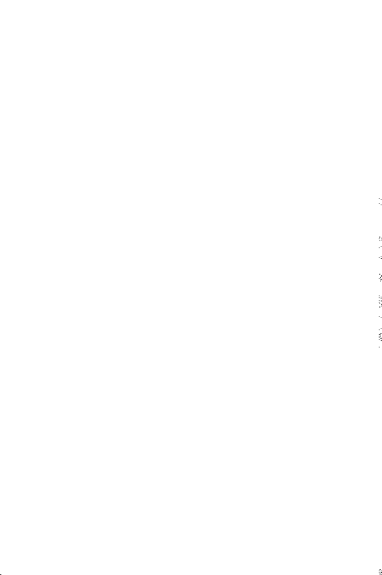
ऊधो के मथुरा लौटकर कृष्ण पर शोध करने और उनका मायाजन्य भ्रम दूर करने की कथा नन्ददास की मौलिक सूक्त है। भागवत तो केवल इतना ही कहती है—“वहाँ (मथुरा) पहुँचकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रणाम किया और उन्हें ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया।” (श्लो० ६६)

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सारी कथा नवीन ढंग से बहुत कुछ मौलिक प्रसंगों के साथ उपस्थित की गई है। यह मौलिकता कहाँ कहाँ है, और क्यों है, यह प्रश्न अनुचित नहीं होगा। नन्ददास के मैवर-गीत के बीच आघार है—

(१) निर्गुण पर सगुण की विजय का तर्कपूर्ण स्थापन।

(२) योगमार्ग और ज्ञानमार्ग की निष्कलना की घोषणा और इन पर प्रेममार्ग की विजय।

(३) गोपियों की रूपासक्ति और प्रेमासक्ति का विशद चित्रण। भागवत में पहले और तीसरे विषय पर लिखा जा चुका है। परन्तु दूसरा विषय परिस्थिति-जन्य है। गोरक्षनाथ के योगमार्ग और संतों के ज्ञानमार्ग के प्रति अवश्या और इनका विशेष लक्ष्य है। भागवत में सभी मार्ग स्वीकार कर लिए गये हैं, यद्यपि प्रेममार्ग ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है। पुष्टिमार्ग में परम प्रेम-स्वरूप श्रीकृष्ण के साकार रूप लीला की ही प्रेमभावना उपादेय थी। इस प्रकार इस ग्रंथ पर भी सम्प्रदाय की छाप पड़ी है। परन्तु इस छाप को एक दूसरे स्थान पर और भी गहरा पाते हैं। पुष्टिमार्ग के कृष्ण तो नित्य हैं, उनकी ब्रह्मलीला भी नित्य है, इसलिए गोपियों का देशान्तर विरह केवल



× × उद्धव कहते हैं—

बह अच्युत अविगत अविनाशी
त्रिगुण रहित वपुधरे न दासी
हे गोपी, मुनु बात हमारी
हो बह शन्य मुनहु ब्रजनारी
नहिं दासी ठकुराइनि कोई
बह देखत तहं ब्रह्महिं छोई
आपुहि औरहि ब्रह्महिं जानै
ब्रह्म बिना दूसर नहीं मानै

इस पर गोविणों कहती हैं—

बार बार ये बचन निबारी
'भक्ति विरोधी' शान तुम्हारी
होत कहा उपदेसे तेरे
नयन मुषण नाहीं अलि मेरे ?
हरियष जोवत निमिष न लागे
कृष्य विद्योगिनि निशिदिन लागे

× × × सैकड़ों पदों में इस प्रकार की ही विचार-धारा और भावना का विकास हुआ है। नन्ददास इस सारी सामग्री से भली भाँति परिचित थे। अतः वे इसकी एकदम अपेक्षा कैसे करते ? हाँ, इस नितान्त बिलरी सामग्री को एकदम में बाँधने और उसे खंडकाव्य का रूप देने की कुशलता उनकी अपनी चीज़ है, और इसके लिए उन्हें श्रेय अवरय ही मिलना चाहिये। एक पद में भी सुरदास ने भ्रमरगीत कहा है—

यह उपदेश कसो है मापी
करि विचार समुल है सापी

अवतार का उद्देश ही यह है कि धर्म की स्थापना हो और अधर्म का नाश। वे धर्ममर्यादा के बनानेवाले, उपदेश करनेवाले और रक्षक थे।' शुक्रदेवजी शंभुसमाधान करते हैं—'सूर्य, अग्नि आदि कभी-कभी धर्म का उल्लंघन और साइस का काम करते देखे जाते हैं। परन्तु उन कामों में उन तेजस्वी पुरुषों को कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थों के दोष से लित नहीं होता' (१०-३३-३०)।

'जब भगवान् अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय धीविग्रह प्रकट कर देते हैं; तब भला, उनमें कर्म-बंधन की कल्पना हो कैसे हो सकती है।'

'ब्रह्मवासी गोपों ने भगवान् धीकृष्ण में तनिक भी दोष-बुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमाया से मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास हैं' (३०-३६)।

नन्ददास को भी इस व्याख्या को आवश्यकता पड़ी और उन्होंने सिद्धान्तपंचाध्यायी की रचना की। इस ग्रन्थ का विश्लेषण करने पर हमें पता लगता है कि उसने विगोपियों के तर्कों का उत्तर क्रिष्ट प्रकार से, क्रिष्ट क्रम से दिया है। वह विश्लेषण इस प्रकार है—

१. आश्रयतत्त्व १—१६
२. रास कथो, मदनगर्वहरण के लिए १६—२४
३. रास-रस २५—२६
४. रास के नायक कृष्ण की पाप-पुण्य निरपेक्षता २७—३७
५. वृन्दावनतत्त्व ३६—४०
६. रास की भूमिका ४१—५०
७. वेतुषादन ५०—५५
८. गोपियों की कृष्णानुसृतता ५६—७४
९. गोपीनेम ७५—८६

धीर

पुद्गल-रेनु उड़ि पगी, कहति तिन सौ मगु बानी

गुणम गुगुण के द्वार, उदार लखी गुदि लारै
कर सौ कुंवरि न परगै, अर सौ निकट परगै
अपने कर अु विरह-अुर, जानति अति ही ताते
मति गुरभाइ सो माला, बाला हरपति याते

भागवत में द्वारका का किञ्चित भी वर्णन नहीं है—'वे ब्राह्म
द्वारकापुरी में पहुँचे, तब दामपाल.....' परन्तु नन्ददास 'पुरी पर-
मापुरी, पाहि के चकित भयो नित' (५५) से आरम्भ करके—

ब्रह्म, इन्द्र, अमरेंद्रवृन्द की भीर बुलाये

भीतर जान सो पाये, अिदि हरिदेव बुलाये (८६)

तक पुरी के सौन्दर्य, रंगमहल की शोभा और कृष्ण के ऐश्वर्य
का वर्णन करते हैं। भागवत में रुक्मिणी विप्र के हाथ लँदेरा भेजती
हैं, परन्तु नन्ददास तो रसशास्त्र में पारंगत ठहरे, वे शृंगारशास्त्र
को उपयोग में लाने का ऐसा मौका रूप ढोड़ते। उन्होंने 'पाती' की
योजना की है—ऐसी ही योजना 'अमरगोत' प्रसंग में दूरदास ने भी
की है, उदय कृष्ण की पत्नी लाते हैं। विरह-काव्य में प्रेमी-प्रेमिका की
पत्नी का एक प्रमुख स्थान है। नन्ददास ऐसा म का कैसे ढोड़ते—

तब काकमनि को कागर, नागर सेह नवीनौ
यखन-खोर सैं खोरि, विप्र भीपर-कर दीनौ
मुद्रा खोलि गोविन्दपद, जब बाँचन बाँचे
परम प्रेम-रस साँचे, अच्युत परत न बाँचे
थ हरि दिखी विरायत, लायत ले ले छाती
लिखी विरह के हाथन, पाती अण्डू ताती
दिये लाइ, सगु पाइ, बहुदि द्विजपर को दीनौ
रुक्मिनि अँगुवन भीनी, पुनि हरि अँगुवन भीनी

(१०१-११०)

भागवत में रुक्मिणी ने सन्देश द्वारा अपने हरने की सब तरकीब बताती है—‘हमारे कुल का ऐसा नियम है कि विवाह के पहले दिन कुल-स्त्री का दर्शन करने के लिए एक बहुत बड़ी यात्रा होती है, जलूस निकलता है—जिसमें विवाही जानेवाली कन्या को नगर के बाहर गेरिजा देवीजी के मन्दिर में जाना पड़ता है। उस समय आप मुझे प्रासानी से ले जा सकते हैं।’ परन्तु नन्ददास की विरह-पाती विरह-गती है, उसमें इस प्रकार की कोई बात नहीं। इससे काव्य में सौष्ठव प्राप्त होता है और कृष्ण का प्रयत्न उद्धारमात्र न होकर ‘नयक का नायिका के प्रति प्रयत्न’ हो जाता है। इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि रुक्मिणी मंगल जैसे छोटे काव्य में भी नन्ददास वहाँ तक मौलिक होने की चेष्टा करते हैं और वे किस तरह रीतिशास्त्र के आधार पर अपनी रचना को खड़ा करते हैं।

भागवत में कृष्ण के कुन्दनपुर पहुँचने पर उनके प्रयत्न और युद्ध एवं विपत्तियों को तैयारी आदि का विस्तृत वर्णन, परन्तु कृष्ण के सौन्दर्य का वहाँ वर्णन नहीं है, परन्तु नन्ददास ऐसे सम्प्रदाय के कवि थे जिसमें रूपासक्ति अध्यात्म-भाधना की पहली सीढ़ी थी। उन्होंने कृष्ण के सौन्दर्य का नरनारियों पर अद्भुत प्रभाव दिखाया है, भले ही वर्णन अप्रासंगिक हो गया हो। इस स्थल पर वे भागवत के ही दूसरे स्थल—श्रीकृष्ण का मथुरा-प्रवेश—से सहारा लेते जान पड़ते हैं—

पुर के लोगन सुनी, कि भी सुन्दर घर आये
 वहाँ तहाँ तैं आये, देखि हरि निश्चय पाये
 कोटि काम-लावन्य-धाम, अँग सँवरे बिय के
 जे जे लोको दृष्टि परे, ते भये तित ही के
 कोउ ओ झलक छवि उरके, अत्र हैं नाहिन मुरके
 ललित लटपपी पतिया, सकि सकि तरे तई मुरके

कोउ कटीली मौहन, निरगत चित्र करे है

कोउ कोउ इदु छवि गिनत गिनत ही हारि परे है

इत्यादि

भागवत में देवी रुक्मिणी को आशीर्वाद नहीं देती, परन्तु यहाँ कदाचिद्
रामचरितमानस के आधार पर—

है प्रसन्न अम्बिका कहति, मुनि रुक्मामनि मुन्दरि ।

पेहे अब गोविन्दचंद, जिय जिनि बिगद करि

भागवत और नन्ददास दोनों में रुक्मिणी के अलौकिक सौन्दर्य और
रुक्मिणी-हरण का सुन्दर चित्रण है, परन्तु नन्ददास उपमा-उत्प्रेक्षा के
सहारे भागवतकार से ऐसी बाज़ी मार ले गये हैं—

‘इसके बाद जैसे सिंह सियारों के बीच में से अपना भाग ले जाय,
वैसी ही रुक्मिणीजी को लेकर भगवान् श्रीकृष्ण—”

(भागवत)

ली चले नागर नगधर, नवल तिया कौरे सैं

मॉलिन अॉलिनधूरि पूरि, मधुहा मधु चैतैं

गहड़ हरी जिमि मुधा, दर्प सब संपन कौ हरि

तैमैं हरि ले चले, आपनौ सहख खेल करि

मुन्दर छॉवरे पिय संग, अति ही आमा भाषी

अनु नव नीरद निकट, चाह चंद्रिका प्रकासी

भागवत के चौवनवें अध्याय की मुद्र, परस्पर व्यंग, रुक्म की पराजय
आदि के जो प्रसंग हैं उनमें मधुर रस को कोई जगह नहीं मिल सकती
था। इन सबको नन्ददास ने अत्यन्त संक्षेप में रस दिया—अधिकार
उपमा-उत्प्रेक्षाओं के सहारे प्रसंग को व्यंजित करने की चेष्टा भर की
न अरासंध और शिशुमाल के महान प्रयत्न का ही चित्र है, न
की गालियाँ हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने सारी कथा

की अत्यन्त रसमय नवीन योजना दी है। उसने पौराणिक कथा को सुन्दर काव्य बना दिया है। इससे छोटा सफल काव्य मिलना असम्भव है। नन्ददास की रचनाओं में रक्तिमती मंगल को भी उतना ही विशिष्ट स्थान मिलना चाहिये जितना रासपञ्चाध्यायी या भ्रमरगीत को मिलता है।

६—दशमस्कन्ध

‘दशमस्कन्ध’ भागवत के दसवें स्कन्ध के पहले २६ अध्यायों का अनुवाद है—या कहिये, संक्षिप्त भावानुवाद है जिसमें सिद्धान्तों के रूप में नन्ददास ने अपनी ओर से भी बहुत कुछ जोड़ दिया है—

‘कौं सिद्धान्त-रतन उकौं।’

प्रसिद्ध जनश्रुति है कि नन्ददास ने भागवत का भाग में अनुवाद किया। ‘वार्ता’ में स्पष्ट लिखा है कि तुलसीदासजी की भाषा रामायण देखकर उन्हें भाषा में पदचद भागवत-उलथा उपस्थित करने की चाह हुई, परन्तु जब वे अनुवाद कर चुके तो पंडितों को मालूम हुआ। उन्होंने जाकर गुसाईंजी से कहा कि इससे भागवत कथा-वाचकों की रोखी जाती है। कही लिला है कि आचार्य ने नन्ददास को आश की कि केवल पंचाध्यायी छोड़कर सारा ग्रंथ नष्ट कर दो (दे० भारतेन्दु का छाप्य), कही यह कि पंचाध्यायी तक की ब्रह्मलीला रस लो, शेष ग्रंथ नष्ट कर दो। अब जो ग्रंथ प्राप्त हैं उनमें पंचाध्यायी तक की सामग्री है—‘पंचाध्यायी’ में का प्रथम अध्याय (२६वाँ अध्याय) भी मिलता है। समझ यह पड़ता है कि भारतेन्दु ने प्रसिद्ध ‘रासपंचाध्यायी’ को ही यह भागवत-उलथे की बची ‘पंचाध्यायी’ मान लिया। इसके अतिरिक्त, यदि ग्रंथ ब्रह्मलीला तक हो रखा याता तो भी शेष ग्रंथ आते। वास्तव में विशेष सुन्दर और महत्त्वपूर्ण आगे ही थे।

हमारी समझ में तो नन्ददास ने पूरी भागवत का अनुवाद अभी न किया होगा। यह सचमुच थकानेवाला काम होता। हम जानते हैं कि स्वयं नन्ददास इस काम को नहीं कर सके। बात यह है कि ब्रह्मसम्प्रदाय के भक्त कृष्ण को छोड़कर अन्य कथाओं में इतनी अभिरुचि नहीं रखते कि उन्हें इन पर काव्य लिखने का उत्साह हो। इस कथन का यह प्रमाण भी है कि नन्ददास ने अपनी रचनाओं में कृष्ण को छोड़कर और किसी धर्म को अपना विषय नहीं बनाया। अलबत्ता उनके रामभाक्त-पद हम छोड़ देंगे। हमारा तात्पर्य यह है कि "दीक्षा" के बाद उन्होंने अपनी दृष्टि को कृष्ण पर ही केन्द्रित रखा। दूसरी बात यह है कि यदि हम "प्रथम अध्याय" को पढ़नी २० पंक्तियों को समझ कर पढ़ें, तो हमें पता लग जायगा कि नन्ददास ने प्रथम को इसी इतने संक्षेप से गुरु किया है—

परम विविध मिय इक रहै, कृष्णचरित सुखी तो यहै
जिन करी 'दशम स्कन्ध' नु आदि, भाषा करि बजु परती ताहि

(पंक्ति ३, ४)

इसने स्पष्ट है कि संसारभर इसी दशमस्कन्ध से होगा है—इसी से दशमस्कन्ध नाम कार्यक है। परन्तु दशमस्कन्ध की पूरी सामग्री हमने नहीं है, वह नहीं, दशमस्कन्ध पूर्वाह्न की सामग्री भी लगभग खाली है। पूर्वाह्न में ४२ अध्याय हैं, नन्ददास के 'दशमस्कन्ध' में २६ अध्याय हैं। जान पड़ता है कि नन्ददास की इच्छा दशमस्कन्ध को ही नन्ददास बनाने की थी, परन्तु ये ऐसा नहीं कर सके। हो सकता है कि प्रथम उनकी अभिरुचि रचना ही थी और आरम्भ यह गया है। इस अनुवाद के कारण यह समझी जाती कि प्रथम का अध्याय भाग हुआ दिनादय—यदि ऐसा करने का कोई कारण नहीं था। 'दशमस्कन्ध' पूरा नन्ददास का अनुवाद नहीं था, कथाकारों के लिए बहुत कुछ कथाकारों के अन्वयों के लिए बाकी रह जाती। नन्ददास ने

अपने ग्रंथ में मौलिकता रखी है—उन्होंने उसमें पुष्टिमागीय दर्शन और धर्म पर व्याख्या की है, इससे यह आशा नहीं हो सकती कि गुणार्द्धी उसका और भगवत का मौलिक भेद नहीं समझ पाते। यह सब किम्बन्दी निराधार है। अधिक सम्भव यह है कि २६वें अध्याय तक पहुँचकर नन्ददास को यह पता चला कि वे अपनी एक पुरानी भूमि पर आ गये हैं। २६वें अध्याय से ३३वें अध्याय तक की सामग्री का उपयोग वे "रासपंचाध्यायी" में कर चुके थे। इसी विषय पर जब वे अपनी एक अत्यन्त उत्कृष्ट रचना उपस्थित कर चुके थे, तब उनसे वैसी ही उतने उच्चकोटि की दूसरी रचना किस प्रकार मिल सकती थी। इस तरह उनका उल्हास नष्ट हो गया और वे आगे नहीं बढ़ सके। 'दशमस्कन्ध' प्रथम अध्याय और रासपंचाध्यायी को समान सामग्री की तुलना भी की जा सकती है। पता चलता है कि नन्ददास ने दशमस्कन्ध से 'रासपंचाध्यायी' की शब्दावली, शैली और पद संग्रह का एक ही उपयोग किया है। जैसे—

विहरत विभिन विहार, उदार, नवल नदनन्दन
(रास० २२१)

विहरत विपिन उदार, ब्रजरमनी ब्रजराजकुमार
(दशम० १३४)

विलुलित उर-वनमाल, लाल जब चलत चाल बर
(रास० २२५)

विलुलित उर वैजंती माल, लटकत चलत सु मद गज चाल
(दशम० १३८)

कोमल किरन अरुनिमा भई
(रास० १२)

कोमल किरन-अरुनिमा, बन में न्यापि रही यौ
(दशम० १०३)

के ऊँचे आकाशवाणी की प्रकृति करने की उपायना मिली। अतः इन्होंने जो आकाशवाणी पूरे करने की विन्ता नहीं की और एक रत्नमय रचना रच दी। परन्तु हम आश्चर्य बसा चुके हैं 'दशमस्कन्ध' बाद की रचना है—यह 'रत्नमञ्जरी', 'विरहमञ्जरी' और 'कृष्णमञ्जरी' की भेषी की रचना है। इन सब ग्रंथों पर 'मञ्जरी' दाग है—किसी रसिक मित्र का आग्रह है। 'विरहमञ्जरी' के कवि ने 'उपनिषद्-रस' की व्याख्या की है— दशमस्कन्ध रचने के अन्त में कृष्ण उपनिषद् है और गोविन्द अपनी रचना देती हुई शिलालार देती हैं—

औ वही उपनिषद् नहि रच्युल,
 सब कोउ निरत सब अति दुख्य
 तहाँ कहति है ब्रजमामिनी,
 लहलहाति अनु नभ दामिनी
 सुन्दरी यह कलगी तत्रि पीय,
 विभुवन मॉक कवन अरु तीय
 सुन्दरि आरभ्य-यय नहि त्रै,
 सुन्दर नन्द-सुवन नहि भवै

(पंक्ति ११८-१२१)

इससे भी इस बात की पुष्टि होती है कि दशमस्कन्ध 'विरहमञ्जरी' के साथ ही की रचना है। अतः हम कह सकते हैं कि रासपञ्चाष्यायी की अद्भुत पूर्णता के कारण ही दशमस्कन्ध अधूरा रह गया। वास्तव में नन्ददास के लिए ब्रज से उत्तर कृष्ण की लीला लिखना भी दुस्तर था। यदि वे 'दशमस्कन्ध' को आगे बढ़ाते भी, तब भी उसे शीघ्र ही पञ्चाष्यायी के साथ समाप्त कर देते। हम यह बात उनके सिद्धान्तों के आधार पर कह रहे हैं। वे 'ब्रजकृष्ण' के निरवविहार में विश्वास करते थे। उनके कृष्ण ब्रज से बाहर कहीं नहीं गये। इस को लेकर उन्हें 'दिशान्तर-विरह' और 'ब्रज को विरह' की

व्याख्याएँ करनी पड़ी है। अतः उनका अनुवाद पंचाषादी के साथ ही समाप्त हो जाता, यह निश्चित है।

दशमस्कन्ध की "कथा का क्रम मूल के अनुरूप ही है। यद्यपि कुछ स्थलों पर कवि ने मूल कथा का शब्दानुवाद भी किया है तथापि साधारणतया वह भावानुसरण से ही संतोष कर लेता है।" ('नन्ददास', पृ० ६६) प० उमाशंकर शुक्ल ने दशमस्कन्ध की तुलना करके यह अन्तर पाये हैं—

"(१) भागवत के द्विज अंशों में शङ्कराचार्य द्वारा प्रवर्तित अविद्या तथा माया के सिद्धांतों का प्रतिपादन अथवा समर्थन होता है उक्त कवि ने बिलकुल छोड़ दिया है। उदाहरणार्थ, 'भागवत' के अध्याय ८ में जब योगमाया कंस को यह सूचना देकर अंतर्गत हो जाता है कि उसका मारनेवाला कहीं अवश्य पैदा हो मुझ ही तब वह आश्चर्यचकित होकर अपने दुःसूर्यों पर परमात्मान करो मानता है। वह कहता है अब मुझे ज्ञात हुआ कि देवा भी मृत बालक हैं। तदनन्तर वह देवकी और बगुदेव को हन प्रकाश समझता है—

दशमस्कन्ध, तुम दोनों पुत्रों के लिए शोक न करो। उन्हींने देव कर्म रिये से पैदा हो कम उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी देव का बचपन है। अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सकते। जैसे मिट्टी में धातु अंतर्गत होती है और नष्ट हो जाते हैं, पर मिट्टी देने का कर्म नहीं है, उसी प्रकार देवता की उत्पत्ति और नष्ट होना भी अन्तःप्रकृत ही रहता है। जो लोग बचपन के ही इस बात का नहीं जानते उन्हीं को देवता अथवा प्राणी के अन्तःप्रकृत ही है और हमें अग्नि वृद्धि में भोग्यता उपाय देना है।

“इस समस्त प्रसंग को कवि ने छोड़ दिया है क्योंकि बल्लभ-सम्प्रदाय में इस प्रकार की विचारावली का पूर्ण विरोध किया गया है।

“(२) भागवत के कुछ प्रसंगों को कवि ने सम्भवतः अनावश्यक विस्तारभय के कारण भी नहीं ग्रहण किया है। तृतीय अध्याय में कृष्ण देवकी से उसके पूर्व जन्म की कथा कहते हैं जिसमें उन्होंने उसके वप से प्रसन्न होकर उसका पुत्र होना स्वीकार किया था। ‘दशमस्कन्ध’ के तृतीय अध्याय में वह कथा नहीं है।

“(३) ‘दशमस्कन्ध (पूर्वाह्न)’ के सम्पादक श्री कर्मचन्द गुग्गलानी ने उक्त ग्रन्थ की भूमिका में यह बतलाया है कि नन्ददास ने अपने ग्रंथ में श्रीमद्भागवत के टीकाकारों के कुछ भाषों का भी समावेश कर लिया है। उनके अनुसार ‘दशमस्कन्ध’ में श्रीधरस्वामी की ‘मावार्थ-दीपिका’, श्रीमज्जीवगोस्वामी कृत ‘वैष्णवतोषिणी’ और श्रीमद्वल्लभाचार्य कृत ‘सुलोचिनी’ से कवि ने सहायता ली है। नन्ददास अपने ग्रन्थ को पुष्टिमार्गीय सभी उपसम्प्रदायों में समाहित कराना चाहते थे इसीसे उन्होंने इन आचार्यों के भाषों को अपनाया है। यह बतलाया गया है कि बल्लभाचार्यजी के अनुसार श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में ‘निरोध’ का वर्णन है तथा श्रीधरस्वामी के मत से उसमें ‘आश्रय’ का वर्णन है। ‘निरोध’ के शब्दार्थ में भी दोनों आचार्यों में मतभेद है। नन्ददास ने दोनों के मतों का समावेश कर लिया है।

“(४) कतिपय परिवर्द्धन श्रीमद्भागवत के वर्णनों को अधिक पूर्ण और रोचक बनाने के विचार से भी किये गये हैं, जैसे प्रथम अध्याय में मथुरा की प्रशंसा में किञ्चित् विस्तार कर दिया गया है। एही भाँति कुछ अलंकारिक उक्तियों भी यत्र तत्र जोड़ दी गई हैं। ये परिवर्द्धन सामान्य ही हैं।” (बरी, पृ० ६६-१०१) नन्ददास का यह

ग्रंथ केवल उनके सिद्धांतों का अध्ययन करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—कि वे कृष्ण-लीलाओं का क्या अर्थ करते हैं, विभिन्न दार्शनिक विषयों पर उनके विचार क्या हैं। एक दूसरे अध्याय में हमने ग्रंथ के इन स्थलों का उपयोग किया है। काव्य-कला की दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। फिर भी नन्ददास के ग्रंथों में, अनेक कारणों से 'दशमस्कन्ध' की उपेक्षा नहीं की जाती।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त नन्ददास ने बहुत से पद भी रचे हैं। सब अभी सम्पादित रूप से हमारे सामने नहीं आये हैं। वैसे छोटे मोटे संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'नन्ददास' में जो सम्पादित पद हैं वे ४० के लगभग होंगे। शेष २४८ पद असंपादित ही 'परिशिष्ट' में शीर्षक के अन्तर्गत दे दिये गये हैं। हमने 'नन्ददास का पदावली साहित्य' शीर्षक अध्याय में इन पदों का स्वतंत्र अध्ययन किया है श्री दीनदयालु गुप्त ने ऐसे ४०० पदों की अवस्थिति की सूचना दी है। जब तक नन्ददास के सारे पद प्रामाणिक रूप से संपादित होकर हमारे सामने नहीं आ जाते, तब तक हम कवि के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काव्यांश पर विशेष टीका-टिप्पणी नहीं कर सकते। 'पुष्टिमार्ग' और 'अष्टछाप' का अधिकांश साहित्य पदों के रूप में है। नन्ददास अष्टछाप के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रत्न हैं। उनके सम्पादित ग्रंथ जैसे-जैसे मिलेंगे तो अन्य अष्टछाप कवियों के पास रहे ही नहीं। अतः अष्टछाप के कवियों में नन्ददास का स्थान आंकने के लिए उनके पद चाहिए।

ऊपर हमने नन्ददास की उन प्रामाणिक रचनाओं पर विचार किया है जो संपादित होकर 'नन्ददास' में उपलब्ध हैं। परन्तु अन्य ग्रंथों की समस्या अभी पूर्णतया निश्चित नहीं हुई है। 'कृष्णमञ्जरी' जैसी रचना जो केवल कुछ वक्तव्यों का एक पदमान है अनिश्चित रहे तो कोई बात नहीं, परन्तु नन्ददास के कुछ अनिश्चित ग्रंथ बहुत

नन्ददास की ६ रचनाएँ अप्राप्य कही जाती हैं। जब तक इनकी प्रतियाँ प्राप्त नहीं होती हम इनके सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते। परन्तु नाम से तो यह ज्ञान पड़ता है कि मानलीला मानमंजरी दोनों अर्धचन्द्रोदय, विशानार्य प्रकाशिका और ज्ञानमंजरी अनेकार्यन्त के ही अन्य नाम होंगे। सम्भव है रासमंजरी और बाँसुरीलीला रासपंचाध्यायी के ही नाम हों। निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। काँकरोलीवाले 'गोवर्द्धनलीला' को प्रामाणिक मानते हैं, 'नन्ददास' के सम्पादक का कहना है कि यह कोई मूलग्रंथ नहीं है, 'दशमस्कन्ध' के इस प्रसंग की भूमिका और इति बाँधकर किसी ने एक ग्रंथ गढ़ लिया हो। हो सकता है, नन्ददास ने ही ऐसा किया हो।

नन्ददास के काव्य में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त

पुष्टिमार्ग के कवियों में केवल नन्ददास के काव्य में पन्थ के धार्मिक एवं साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इन सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए सिद्धान्तपंचाध्यायी, विरहमञ्जरी, रूपमञ्जरी, रसमञ्जरी और रासपंचाध्यायी विशेष रूप से पठनीय है। इन ग्रन्थों में भी सिद्धान्तपंचाध्यायी प्रमुख है।

सिद्धान्तपंचाध्यायी में रास-कथा के रहस्यवात्मक एवं आध्यात्मिक रूप को विशेष रूप से स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। प्रथम अध्यायों में विभाजित नहीं है। इससे साफ है कि रास-सम्बन्धी पाँच अध्यायों की विवेचना के कारण ही इसको यह नाम दिया गया है। नीचे हम विभिन्न शॉपों के अन्तर्गत नन्ददास के सिद्धान्तों का अध्ययन करते हैं।

१—कृष्ण

कृष्ण के रूप, गुण, कर्म अपार हैं—वे परम धाम, बगवाम, परम अभिराम, उदार हैं। आगम, निगम, पुराण, स्मृति, इतिहास—सात ज्ञान-विज्ञान उनकी निःस्वात है। उनके पदगुण (६ गुण) हैं। वही नारायण हैं। वही अवतार धारण करते हैं। सबके आश्रय हैं, अविधि भूत हैं। उनकी लीलाओं के कई भाग हैं शिशु, कुमार, पौर्ण्ड्र, बड़े बय की धर्म-संस्थापन लीला, परन्तु वे 'नित्यकिशोर' हैं। विखुली (शिव) उनकी माया के यष्ट में है। उन्होंने ही इन्द्र का गर्व खर्ब किया। रासलीला करके वही मदन (काम) के गर्व को

राते हैं। वे ही ब्रह्म हैं। जीव में उनका घेद प्रगट करके ही उन्हें समझाया जा सकता है—

ज्ञान, करम, माया-अधीन, ते खोउ बनानि
विधि-निषेध, अष्ट वार-पुण्य, तिन में सब साने
परम परम ब्रह्मण्य, ग्यान-विग्यान-प्रकाशी
ते कषी कहिने खोउ सटग, भुक्ति-विम्वर-निवासो
करम, कास, अनिमादि, भोगमाया के स्वामी
ब्रह्मादिक कीडान खोउ, सर्वांतराामी

(वि० प० २६—३४)

कृष्ण ही अलंकारानन्द, नन्दनन्दन, ईश्वर, हरि हैं। वे ही अना परमब्रह्म, परमात्म, स्वामी हैं।

२—जीव

जीव काल, कर्म और माया के अधीन है। वे विधि-निषेध और पाप-पुण्य में बँधे हैं। वे संसार की (माया-) घारा में बहे जाते हैं।

३—माया

'संसार' का कारण ब्रह्म नहीं, माया है। नन्ददास ने माया को इ कहा है—

रूप, गंध, रस, सन्ध, स्पर्श जे पंच विदे वर
महाभूत पुनि अंच, पवन, पानी, अंबर धर
दस इन्द्रिय अठ अर्दकार, महत्त्व, विगुन, मन
यह सब माया कर विकार, कहै परमहंस मन

(५८)

‘या हरि (कृष्ण) के अधीन है—

खो माया भिनके अधीन, नित रहत मृगी बस
विरय-प्रभव, प्रतिपाल, प्रलै-कारक, आपस-बस

(६-१०)

नन्दरास के काव्य में पुष्टिमार्ग के सिद्धांत

कल्पित, रक्षण, सुसुप्ति अवरपाएँ भी माया के ही कारण हैं । इस भाव के खनकर में धीव का ईश्वरीय अर्थ (ज्ञानन्दभाव) तिरोभूत हो गया है ।

४—अवतार

इस 'ज्ञानन्द-भाव' में धीव को प्रविष्ट कराने के लिए अखंडानन्द (कृष्ण) कद याकर अवतार लेते हैं । भक्ति प्राप्त होने पर धीव नस ही भाँति ही ज्ञानन्दमूर्ति हो जाता है—

सपन, सच्चिदानन्द, नन्दनन्दन, ईश्वर जब
तैसैंई तिन के भगत, जगत में भये भरे रस

(वि० पं० ३८)

५—चुन्दावन

ज्ञानन्द की श्रीदाभूमि चिदधन है, कृष्ण का नित्य सदन है
लौकिक प्रदेश नहीं । 'सिद्धान्त-पंचाध्यायी' में कवि कहता है—

धी चुन्दावन चिदधन, छुन छुन धन छुवि पावे
नन्द-सुवन को नित्य-सदन, भुक्ति-स्मृति जिहि गावे

• (३६-४०)

'पञ्चपंचाध्यायी' में उसने इस अलौकिकता का विशद किया है—

धी ' चुन्दावन चिदधन, कछु छुवि वरनि न जाई
कृष्ण ललित लीला के काज, धरि रखौ जइताई
जहँ नग, खग, मृग, तला कुंज, बीरघ, तून जेते
नहिंन काल-गुन-प्रभाउ, सदा सोमित रहै तेते
सकल जन्तु अभिरुद्ध, जहाँ हरि-भृग संग चरहीं
धाम, क्रोध, मद, लोभ-रहित लीला अनुसरहीं

शिगुराम ने महादेव किया, बहु महाशुद्ध हो मुक्ति को प्राप्त हुआ।
 धारणा, मरणा, मृत्वा, प्राणसाधन, योग की अप्रत्यांग साधना, सभी
 उसके मार्ग हैं। गोपियों ने ठाड्ड काम की साधना द्वारा कृष्ण की
 प्राप्ति की (सि० पं०, २१७-२२८) नन्दराज गोपियों को न शक्ति का
 प्रवचन करते हैं, न भक्तियों का, केवल ठाड्डा के रूप में वे इनका
 प्रयोग करते हैं—

पाह मनोरथ धरनौ, जैसे हरौ भुतिगन

(सि० पं० २१२)

यत्रारसे संरिषतः कृष्णः श्रोभिः शक्त्या समाहित

(अष्टुमाध्य ३, ३, ३)

भुत्यन्तर रूपायां गोरिकानां

(षोडश ब्रंय, पृ० १८)

अपर मुधा गोरिकाना सम्बन्धिनी
 बहुवचनेन समुदायरूपा लक्ष्मीरप्येन सूचिता ।

(वही, पृ० १६)

बल्लभाचार्य ने गोपियों को कृष्ण की शक्ति, भुतिरूप, समुदायरूपा
 लक्ष्मी कहा है। भागवत में 'गोपजाति' को "प्रतिबुद्ध देवता"
 कहा गया है—

गोपजाति प्रतिबुद्धा देवा गोरालरूपिणः

इंदिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं रूप ।

(स्कं० १० अ० १६ श्लो० ११)

नन्दराज इन सब व्याख्याओं से परिचित अवश्य थे, परन्तु उन्होंने
 साधक्या में एकांततः आभ्यात्मिकता का आरोप नहीं किया है। इसके
 उन्हें गोपीतरण की रहस्यात्मक व्याख्या की आवश्यकता नहीं पड़ी।

८—रास

रास की भूमिका शृंगारिक है। कृष्ण आश्रय हैं, सरद रवनी, चन्द्रमा आदि रसराज के सहायक उद्दीर्न विभाव के अंतर्गत आते हैं। रास में संयोग शृङ्गार ही चित्रित है, परन्तु नन्ददास स्पष्ट कहते हैं—

जे परिद्धत सिंगार ग्रंथ मत यार्थे छाने
ते बहु भेद न जाने, हरि कौ विपदं माने

स्पष्ट है कि उनके मत में पंचाध्यायी (रास) लौकिक संयोग केलि-विलास से भिन्न है। गोपियों के लिए भले ही यह प्रसंग काम-प्रसंग हो, परन्तु साधक भक्तों के लिए अप्यात्मतत्व है। कवि कइता ही है—

कृष्ण-गुष्टि करि कर्म करे जो ज्ञान प्रकारा
फल विमिचार न होइ, होइ मुख परम अघारा

(सि० पं०, ६७-६८)

गोपियों का प्रेम शान के ऊपर प्रेम भी विजय का रूपक है—

ग्यान बिना नहिं मुक्ति, यही परिद्धतगन गावौ
गोपिन अपनी * प्रेमपंथ, न्यारीई दिखरावौ
ग्यान आत्मा-निष्ठ, गुनत सौ आतम-गामी
कृष्ण अनाहत परम ब्रह्म, परमात्म स्वामी
नार्हिन बहु सिङ्गारकथा इहि पंचाध्याई
सुन्दर अति निरवृत्ति-परा तैं इती बड़ाई
जिन गोपिन कौ प्रेम निरखि मुक भये अनुरागी
ब्रह्मानन्द मगन, ते निकसै छै वैरागी
पुनि तिन की पद-पंकज-रज अत्र अत्रहुँ बाँछे
ऊँची बुद्धि विमुद्धन सौ पुनि सो रज इछे
संकर नीके जानत, सरद, नारद गानत
तातैं सदै ब्रह्मगुरु, गोपिन गुरु करि मानत

(सि० पं०, ७५-८६)

ब्रह्म में अत्यंत नैष्ठिक्य स्थापित हो जाता है। रास के इस आध्यात्मिक रहस्य से सुरदास भी परिचित थे। उन्होंने लिखा है—

रास रास रीति नहि भरनि आवै
 कहाँ बैसी बुद्धि कहाँ बह मन लहौ,
 कहाँ रह चित्त क्रिय भ्रम मुलावै
 सो कहाँ कौन मागे निगम अगम सो
 कृपा बिनु नहि या रसहि पावै

(सुरदासर, स्क० १०, पृ० ३४०, पद ६३)

रास की इस आध्यात्मिकता से नन्ददास भी मली-भाँति परिचित थे। राससंचायायी का अर्थ करते हुए वे कहते हैं—

निश्च रास रमनीष, नित्य गोपीजनवल्लभ
 नित्य निगम यौ कहत, नित्य नव तन अति दुर्लभ
 यह अद्भुत रस रास, कहत कछु कहि नहि आवै
 सेस सहस मुल गावै, अज हूँ अन्त न पावै
 - सिव मन ही मन प्यावै, काहु नाहि जनावै
 सनक सनदन चारद, नारद अति ही भावै
 जदपि पद-कमल कमला, अमला, सेवति निशि दिन
 यह रस अपने खपने, कबहुँ नहि पायौ तिन
 अज अम हूँ रज बाँझु, सुन्दर बृंदावन की
 सो तनकहु नहि पावत सल मिटत नहि मन की
 चिन अधिकारी भये, नहिन बृन्दावन सुकै
 रेनु कहाँ तैं सुकै, जय लगि वेस्तु न भूकै
 निपट निकट ज्यौ घट में अंतरजामी आहौ
 विपय-विदूषित इंद्रो, पकरि सकै नहि ताही

(५७३—५८६)

यह 'रास' मस (कृष्ण) की अम्यतम एकांति लीला है बिउके
 निर, पद्मभाचार्य ने "कैरव्य" शब्द का प्रयोग किया है (अष्टुमान्य,
 २-६-३३)। लीला में भाग लेना ही मोक्ष है (सा लीला कैवल्यं मोक्षः)
 इक्षोनिर्य पृथिव्यां के कवि को अम्यतम साधना यही होती
 यह कृष्ण की लीला को अत्यंत निष्कट से देखे। नन्ददास
 पर है—

देखी देखी री नागर नट,
 नितत कालिंदी तट,
 गोपिन के मय्य राखे मुकुट लटक।
 काङ्क्षिनी किङ्किनी कटि, पीताम्बर की चटक,
 कुंडल फिरन रवि-रथ की झटक।
 ततयेई तातायेई सबद सकल उषट,
 उरप तिरप गति परै पग की पटक।
 रास में राखे राखे, मुरली में एक रट,
 नन्ददास गावै तहँ निर्यट निष्कट ॥

यह लीला या रसभाव ही मत्क का अंतिम ध्येय या नवोक्ति "लीला
 या एव प्रयोजनत्वात्" (अष्टुमाध्व)। भगवान् और मत्क दो
 दृष्टिकोण से युगल मिलन, रास, लीला—यही अंतिम बाँझा है।

६—कृष्णविरह

नन्ददास के वाक्य में कृष्णविरह की सुन्दर व्याख्या हुई है।
 • कहते हैं—

कृष्णविरह नहि विरह प्रेम-उच्छलन कहावै
 निष्कट परम सुख-रूप, इतर सब दुख विरहावै
 गोपियों को गर्ब हो गया या कि वे कृष्ण की परम कृपापात्री हैं।
 नन्ददास का कहना है कि शुद्ध प्रेम में गर्ब नहीं रहता—

गरवादि के बड़े काव्य के अंग आदि वे
सुद प्रेम के अंग नाहि, आनहि प्राकृत ये

कृष्ण को गोपियों के काम-भाव को विरुद्ध निःशील प्रेम में बदलना था। इसीसे उन्होंने गोपियों से अंतर्धान होकर उनके गर्व का परिहार किया। इसके अतिरिक्त गर्व प्रेम-विष्वंसक भाव है। प्रेमी-शिरोमणि कृष्ण इस प्रकार के भाव को कब सह सकते हैं—

जब जब को उद्गार होइ अति प्रेम-विपुंसक
सोइ सोइ करै निरोध, गोपकुल-केलि-उतंसक
नाहि बहुत इन्द्रियगामी, कामी कामिन के बस
सब घट अंतरभ्रामी स्वामी परम एकरस
नित्य आत्मानंद, अलंसक सरूप उदारा
केवल प्रेम सुगम्य, अगम्य अवर परकारा

(सि० पं०, १७३-१७८)

गोपियों ने 'अंग उधारन-कारन' (वही, १८३) शुरू होकर यह प्रेम-मार्ग दिखलाया। इस प्रकार हम जानते हैं कि 'परम प्रेम' (विरह-मंजरी, १), उज्ज्वल रस (सि० पं०, १८८८) आदि शब्दों में नन्ददास ने गोपीप्रेम को सांसारिक प्रेम से अलग करने की चेष्टा की है। परन्तु उन्होंने अनिश्चिततः इस प्रेम को शृङ्गार-शास्त्र पर ही खड़ा किया है क्योंकि प्रहार-भेद होने पर भी भूमि एक ही जैसी है। विरह-मंजरी और रसमंजरी में शृङ्गार-शास्त्र को प्रेम-भक्ति का अंग बनाने का प्रयास हुआ है। विरहमंजरी श्रुतसंहार के टंग पर लिखा बारह-मासा है, परन्तु साथ ही चन्द्रदूत की कल्पना भी मेषदूत के टंग पर की गई है और एक कथासूत्र भी खड़ा किया गया है। ब्रजवाला चन्द्र को दूत बनाकर भेजती है, बारहों महीनों में विरहियी की व्यथा का चित्रण है। प्रातः सोकर उठती है तो बंसी की ध्वनि सुनाई पड़ती है। बहूदा मिलाने के बराने दौड़ती है, बाहर पौर पर कृष्ण हैं जो

('अंतरजामी सबके त्रिय के') सब जानते हैं । वास्तव में इस रचना में कवि ब्रज के विरह की व्याख्या करना चाहता है । वह करता है— ब्रज का प्रेम-वियोग सुलभ नहीं पाता, अच्छे-अच्छे इसमें उलभ हैं । ब्रज के विरह ४ प्रकार के हैं—

(१) प्रत्यक्ष

(२) पलकांतर

(३) वनांतर

(४) देशांतर

विरह प्रेम की भूमिका है—

जे घट विरह-भवा-भनल, परिपक भये सुभाह

तिन हीं घट में नन्द हो, प्रेम-अमी ठहराह

(वि० मं०, १५)

प्रत्यक्ष विरह राधा का विरह है जो नवनिकुञ्ज-सदन में कृष्ण के साथ विहार कर रही है, परन्तु संयोग में भी वियोग का अनुभव कर कहती है—

मेरे लाल कहीं री ललिता

इस प्रकार संग्रमनय मिलन भी वियोग हो जाता है । पलकांतर विरह में प्रेमिका प्रमी को देखना चाहती है, वह सामने है, परन्तु पलकों की बाधा भी उठने रहन नहीं । वनांतर प्रेम गोपियों का है । कृष्ण वन को गाय चरणे जाने हैं तो भी गोपियों को प्रेम के कारण चैन नहीं पड़ता—

नैन, बैन, भन, भवन सब, जाह रहे त्रिय पाग

तनक प्रात घट रहन है, तिरि छावन की छाव

(वरी, १२)

देखांतर विरह में कृष्ण की मयुरा, द्वारका आदि की लीलाओं को याद कर उनसे स्मृति में सदाकार स्थापित किया जाता है। बारहमासा इसी विरह का फल है।

रसमंत्रि नायक-नायिका-भेद का ग्रन्थ है, परन्तु इसे भी कृष्ण-प्रेम की भूमिका के साथ उपरिष्ठत किया गया है—

नमो नमो आनन्दधन, मुन्दर नन्दकुमार
 रसमय, रसकारन, रतिक, जग जाके आधार
 है तु बहुतक रस इहि संसार, ताकी प्रमु तुम ही आधार
 यो अनेक सारिता बल बहै, आनि सबे सागर में रहै
 जग में कोउ कवि बरनौ काही, जो बस-रस सब तुम्हरी आही
 यो जलनिधि तै बलपर बल लै, बरती, हरती अपने कर लै
 अग्नि तै अनगन दीपक बरै, बहुरि आनि सब तामें रहै
 देखै ही रूप प्रेम रस जो है, तुम सै है, तुमही करि सोइ
 रूप प्रेम आनन्द रस, जो बहुत जग में आदि
 सो सब गिरिधर देव जो, निधरक बरनौ तादि

(रसमंत्रि, १—१०)

इस भूमिका के सिवा 'नायिका-भेद' में कृष्ण-कथा या भक्ति का कोई सम्बन्ध उक्त प्रकार स्थापित करने का प्रयत्न नहीं किया गया है, विला 'उत्कल नीलमण्ड' में। वास्तव में, हिन्दी कृष्ण-काव्य में मोरियों में नायिका-भेद की स्थापना नहीं हुई है—केवल अमिताभिका, लक्ष्मणा या प्रियतमिका ही हैं। परन्तु फिर भी इतने प्रसंग से ही इस स्थापना का सम्बन्ध करना कृष्ण-भक्ति के निम्न आधारक हो जाता था।

पुष्टिमार्ग में कृष्ण परम प्रेममय, परम नायक माने गये हैं। साथ ही प्रेम के आभय होने के कारण वे परम रूपमय भी हैं। रस-मंत्रि में इसी माने नन्ददास करते हैं—

प्रथमहि प्रनर्क प्रेममय, परम शीत जो आदि
रूप-उत्पन्न, रुचानधि, नित्य कहत कवि ताहि

सांसारिक प्रेम को कृष्ण-प्रेम की ओर ही अभिमुक्त करना पुष्टिमार्गीय कवि का काम था। अतः रूपमंत्रों में इस प्रकार की कथा की योजना की गई है (दे० कथा)। इसे ही कवि ने 'परम प्रेमपद्धति' (रूप०, ३) कहा है। इसे वे 'सूक्ष्म मग' भी कहते हैं—

ऐने शौ प्रमु के पञ्च-पग, कविन अनेक प्रकार कहे मग
तिन में हर एक सूक्ष्म रहे, शौ तिहि बलि जो इहि बलि चहे
कथा की भूमिका में दर्शन स्पष्ट है—

पुनि प्रनर्क परमात्म जोई, पट-पट, विषट पूरि रहौ सोई
ग्यौ बल भरि बहु मात्रन माही, इन्दु एक खरी में झाँरी
जु बहु मानवर सखि की भाँई, सो न ह्युद दिहलर ह्युनि पाई
तरनि-किरण सब पाहन परसै, फटिक माँक नित्र तेजहि दरसै-
स्वाति बूँद अहि-मुख विष होई, कदलीदल कपूर होइ सोई
जुबन रूप सँग सोभा पावै, सो कुरूप टिंग बदन दुरावै
एके पट अनेक रँग गहै, सु रँग रँग सँग अति छवि लहै
पुनि जस पवन एकरस आही, बस्तु के मिलत मेद भयो ताही
रविकर परसि अग्नि बिहि होई, सो दरपन जग विरलौ सोई

जगमग-जगमग करहि नग, शौ जराइ सँग होइ
काँच किरन कंचन खचे, भलौ न कहियै कोइ

(रूप०, ६—१५)

इस कहानी में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि संसार का सब सौंदर्य, प्रेम, पेश्वर्य भगवान् के भोग के लिए है, मनुष्य के भोग के लिए नहीं। इस प्रकार इंद्रियों को लौकिक विषयों से हटा कर कृष्णानुसृत करने की चेष्टा की गई है। यहाँ 'परकीया', रति की भी व्यवस्था

है। रूपमञ्जरी का प्रेम परकीया का प्रेम है, यद्यपि कृष्ण स्वप्न में ही मिलते हैं, साक्षात् में नहीं। इससे स्पष्ट है कि अतिनिन्दित परकीया प्रेम को वैष्णव भक्तों ने केवल एक मानसिक आध्यात्मिक अवस्था माना है। कहानी का मंतव्य है—

अदपि अग्न तै अंगम अति, निगम कहत है आदि
तदपि रँगीले प्रेम तै, निपट निकट प्रमु आदि

(रूप० म० ५७७, ५७८)

वारतव में सूफ़ी सम्प्रदाय की भाँति पुष्टिमार्ग में भी 'विरह की साधना' (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जिसे 'प्रेम की पीर' की साधना लिखा है) की प्रधानता थी। इसी विरह-साधना को विरहमञ्जरी और रूपमञ्जरी की नायिकाओं के घट्श्रुतु और बारहमासे से संकेतित किया गया है। इस विरह की साधना को ही प्रेममति (रासपंचाध्यायी ५८८), परम रस (वही, ५९६), परम कांत एकांत (वही, ५९६) और 'उज्वल रस' (वही, ५९७) कहा गया है। यह स्पष्ट है कि बल्लभकुल के भक्त कृष्ण के प्रति एकांत-निष्ठ प्रेम को शृङ्गार (लौकिक प्रेम) से अलग करने के लिए बराबर शब्द गढ़ते रहे हैं जिससे उसकी अलौकिकता साधारण जनों के मन में पैठ जाये। इतना होने पर भी यदि जन भ्रष्ट हो जायें, तो उनका क्या दोष ? नन्ददास स्पष्ट कहते हैं—

बिन अधिकारी भये, नहिंन नृन्दावन सूफ़े
रेतु कहाँ तै सूफ़े, अब लागि बस्तुन भूफ़े
निपट निकट ज्यौ घट में अंतरजामी आदी
बिषय-बिदूषित इन्द्री, पकरि सके नहिं, तारी

(वही, ५८३—५८६)

यह रहस्यलीला हीनभद्रा, निन्दक, नास्तिक, हरिधर्मवदिर्मुल मनुष्यो

की समझ में आ ही नहीं सकती, यह तो भक्तों के ही लिए है (देखिये रासपञ्चाध्यायी, ५८७—५९६)

इस प्रकार नन्ददास के काव्य में गोपी-प्रेम का विषय विवेचन हो जाता है । सिद्धांत-पञ्चाध्यायी (२१७—२१८) में कवि स्पष्ट कहता है कि उनका प्रेम वासनामय या (काम), परन्तु वही कृष्णोन्मुख होकर निःसीम प्रेम (परम रस) हो जाता है । गोपियाँ कृष्ण के रूप से आसक्त हुई थीं, परन्तु यही रूप-प्रेम उनकी कृष्ण-प्राप्ति का कारण हुआ । मुरली का आह्वान रूप-लोभ को अप्पात रस में परिणत कर देता है । जो गोपियाँ नहीं आ पातीं उनका घोर विरह-दुःख उनकी कामनाओं को मरम कर देता है—

परम दुःख ही कृष्ण-विरह-दुःख व्याप्यौ त्रिनर्म
कोटि वरस लागि नरक-भोग-अथ भुगते क्षिप्त मीं
पुनि रंचक परि प्यान, पिपहि परि रम दिशौ अब
कोटि स्वर्ग-मुख भुगति, क्षीन कीने मंगल वध

(रास० पं०, १२८—१३०)

इस प्रकार कृष्णरस-प्राप्त करने वाली आत्मा का पाप-पुण्य मङ्गल-अमङ्गल सब नष्ट हो जाता है । नन्ददास के अनुसार गोपियों का प्रेम परकीया प्रेम है—

रस मीं जो उपपति-रस चाही
रस की अरवि कहत कवि ताही

(कामज्योती, ११६)

यह 'परकीया प्रेम' ही पुष्टिमागीय वाचना का अंतिम श्लोक है । राधा और हस्तिनादी दोनों का प्रेम परकीया का प्रेम है, दोनों विरादिकाई हैं (देखिये, उद्यानवागर्ण शरीर, हस्तिनादी वागर्ण)

भी बड़ा है। इसीसे नन्ददास के ग्रंथों में राधा का चित्रण नहीं मिलेगा।

इस प्रकार हम नन्ददास के काव्य में कृष्ण-भक्ति और शृङ्गार का तादात्म्य देखते हैं। अणुभाष्य में बल्लभाचार्य इस भक्ति और शृङ्गार के द्वन्द को स्पष्ट शब्दों में रखते हैं—

वस्तु तस्तु प्रामर्शितस्य सिद्धस्वरूपत्वेऽपि न तादृशं वस्तुं शक्यं
तथा लौकिकपुंसि नाभ्यां वा तदाभासौ रसशास्त्रे निरूप्यते तदृष्टान्तेन
भगवद्भाववद् भगवद्भक्तीति भावनार्थे न स्तृणीय लौकिके तात्पर्यं
भवितुमर्हति (३-३-५७) । परन्तु यह स्पष्ट है कि जब स्वयं
आचार्य रसशास्त्र को नहीं छोड़ सकते तो फिर भक्त कवियों के लिए
शृङ्गार-रसशास्त्र की उपेक्षा करना कहाँ सम्भव था ? मधुरा भक्ति
को कबीर के काव्य में ही हम रसशास्त्र (शृङ्गार) की सहायता से
प्रकाशित होता हुआ पाते हैं। उन्होंने 'राम की बहुरिया' बनकर
अदृष्ट सत्ता के प्रति वियोग और संयोग के गीत गाये हैं। आधुनिक
विद्वान भी इस बात से सहमत हैं कि प्रेम की उच्चतम स्थिति का
प्रकाशन प्रेमी-प्रेमिका के रूपक से ही हो सकता है—

“मनुष्यों के सम्बन्धों में सबसे घनिष्ठ सम्बन्ध दाम्पत्य प्रेम का
है। ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध इससे ऊँचा और बड़ा-चढ़ा होना
चाहिए। यही शृङ्गारी उपासकों की उपासना का मूल आधार है। जो
सम्बन्ध हमारे ज्ञान के सब उत्तम हो, ईश्वर का सम्बन्ध उससे भी
अधिक उत्तम होना चाहिए। यूरोप के भी ईसाई सम्प्रदाय को मसीह
की स्त्री माना है और दाम्पत्य प्रेम को प्रेम का आदर्श कहा है।
मुलेमान का गीत जो भेद गीत कहा जाता है, शृङ्गार की माया से
परिपूर्ण है। (नवरत्न पृ० १३६-१३७)

बल्लभाचार्य के समय में ही कृष्ण-कथा में शृङ्गार का मेल हो गया
था। विद्यापति, हरिवंश, हरिदास, तानसेन, सुरदास प्रभृति गायक-भक्त

जगदेव की शृंगार मति (मधुरा मति) की परमरा को तेजी से आगे बढ़ा चुके थे । नन्ददास के काव्य में पहली बार शिदान्त के रूप में शृंगार और मधुरा मति के तादात्म्य की स्वीकृति है ।

१०—निरोध

बल्लभाचार्य के अनुसार मागवत निरोध-ग्रंथ है, इसलिए बल्लभाचार्य के शिदान्त को काव्य रूप में समेटने के लिए नन्ददास ने उसका भागानुवाद उपस्थित किया है । उन्होंने मागवत दशमस्कन्ध के कविगारुड भागानुवाद में पुष्टिमार्ग के शिदान्तों को एक बार फिर उपस्थित करने की चेष्टा की है । इस दृष्टि से यह अनुवाद महत्वपूर्ण है । उसके अनुसार मागवत दशमस्कन्ध “आभय वस्तु कौ रसनय विन्धु” है । आभय वस्तु के नव लक्षण हैं (१) सर्ग, (२) विसर्ग, (३) स्थान, (४) पोगन, (५) ऊति, (६) मन्वन्तर, (७) नृपगन गोगन (८) निरोध, (९) मुक्ति । सर्ग का अर्थ है महदादिक कारण वर्ग की सृष्टि । कारणों से विरव बन लेता है, इसे ही विसर्ग कहते हैं । सर्वादिक मर्यादा धारण करनेवाले ‘स्थान’ (यान) हैं—मक्त के दोषों के रहते भी आभय उनकी रक्षा करते हैं, इसे पोगन कहते हैं । साधु-असाधु वासना वहाँ हो वहाँ ऊति । ‘मन्वन्तर’ समीचीन धर्म की व्याख्या जैसे मुचकन्द आदि की कथा । निरोध के अर्थ हैं दुष्ट नृपों का श्रमोष-हरन । मुक्ति का अर्थ है अन्य रूप का त्याग और निज स्वरूप की प्राप्ति । यही आभय दशमस्कन्ध के रूप में भक्तों के हित प्रगट हुआ है । दसवें स्कन्ध में जो निरोध है, उसके कई भेद हैं—

(१) दुष्ट नृपदलन (साधारण, इसे सब जानते हैं)

अन्य भेद श्रद्धामुत और असाधारण है—

(२) भक्तहिं हतर विधे तैं निरोध, उतहिं मोक्षमुख तैं अररोध
मुद प्रेममधि प्रापति करै, एक निरोध इहि विधि विलरै

व्यों ब्रजवासिन मोक्ष दिखाइ, ब्रह्मानन्द बहुरि ले जाइ
मधुर मूर्ति बिन अब अब अकुलाने, तब फिरि बहुरथी ब्रज ही जानै

(३) अदपि कोटि ब्रह्मांड के कर्ता, अह तिन्के भर्ता-संहर्ता
परम सनेह भक्ति होइ जाके, ईश्वरता कछु फुरै न ताके
व्यों अमुमति मुख में जग पैख्यौ, सुत ईश्वर करि नाहि न लेख्यौ
सहित बाललीला लपटानी, सौ बह भूतक्रिया ही जानै

(४) अब मुनि कृष्ण विरैक निरोध
अदपि अनन्त अखण्डित बोध
सो सब रंचक ताहि न फुरै
अब हठि मातस्तेन अनुसरै

(५) अबर निरोध-भेद जे आदि
रसलीलन में, लीख्यौ काहि

ऊपर के सिद्धान्तों और बल्लभाचार्य के सिद्धान्तों में कुछ अन्तर
मान पड़ता है। किन्हीं नन्ददास ने आश्रय वस्तु के लक्षण कहा है वे
वास्तव में बल्लभाचार्य के दिये भागवत के श्लोकों के नाम हैं। उन्होंने
दशमस्कन्ध को 'निरोध' विषय का ग्रंथ कहा है। इसके अतिरिक्त
नन्ददास ने भी इन श्लोकों की व्याख्या की है, वह भी उनकी अपनी
है। इस भेद का कारण यह है कि उन्होंने दशमस्कन्ध में ही सब कुछ
पा लेने की चेष्टा की है।

बल्लभाचार्य 'निरोध' और 'पुष्टि' को लगभग साम्यवाची शब्द
मानते हैं। पुष्टि के श्लोक में उन्होंने असुभाष्य में लिखा है—

ः कृतिषाण्यं वाचनं ज्ञानं भक्तिरूपं शारथेयं बोधयेत् । ताम्बां
विदित्यामर्षां मुक्तिर्मैर्यादा । तत्रिंशितानामपि एव स्वरूपबलेन स्वभाषणं
पुष्टिरित्युच्यते ।

(शास्त्र करते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है और तद्विहित

साधन से मक्ति मिलती है। इन साधनों की प्राप्ति का नाम मर्यादा है। ये साधन सर्वसाध्य नहीं। अतः अपनी ही शक्ति से ब्रह्म को मुक्ति मक्तों को प्रदान करता है, वह पुष्टि कहलाती है। श्री पुत्रादि के विषय में आसक्ति को रोक भगवान् का भक्त (जीव) को स्वात्क करना—यही निरोध (रोकना) है। 'निरोध लक्षणम्' में आचार्य लिखते हैं—

हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्ना भवसागरे ।
ये निरुद्धास्तए वाधे मोक्षमायां त्यहनिष्ठ ॥

(भगवान् के द्वारा जो छोड़ दिये गये हैं, ये संसार सागर में डूब गये हैं, और जो निरुद्ध किये गये हैं वे रातदिन आनन्द में लीन हैं।) 'तदाय सर्वस्व' में इसकी व्याख्या करते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लिखते हैं—

“इस वाक्य से यह दिखाया कि निरुद्ध होना स्वसाध्य नहीं है। जिनको वह (ईश्वर) चाहता है निरुद्ध करता है, नहीं तो उसे छोड़ देता है। मनुष्य का बल केवल उस मार्ग पर प्रवृत्त होना है, परन्तु इसमें निराश्रय न होना चाहिए कि जब श्रंगीकार करना वा न करना उसी के आधीन है, तो हम क्यों प्रयत्न करें। हमारे बलेष्ट करने पर भी यह श्रंगीकार करे वा न करे, ऐसी शंका कदापि न करना।” इस 'निरोध'-मार्ग में मक्त की साधना क्या है, यह आचार्य के इस शानुमुक्ति-प्रकाशक उद्धरण से स्पष्ट होगा—

वयं दुःखं यद्योदाया नन्दादीनां च गोकुले ।
गोरिकानां च यद्दुःखं तद्दुःखं स्वान्मम क्वचिन् ॥
गोकुले गोरिकानं च सर्वेषां ब्रह्मरानिनाम् ।
बन्मुखं सममूढान्ये भगवान् किं विधास्यति च
उद्धवागमने चाल उल्लवः शुभहान् कथा ।
वृन्दाधने गोकुले वा तथा मे मानसि क्वचिन् ॥

जो दुःख यशोदा-नन्दादिकों एवं गोपबनों को गोकुल में हुआ था, यह दुःख मुझे कब होगा ? गोकुल में गोपीबनों एवं सभी ब्रजवासियों को जो भली भाँति सुँल हुआ वह सुँल भगवान् कब मुझे देंगे ? उद्धव के आने पर जैसे वृन्दावन और गोकुल में महान् उत्सव हुआ था, क्या वैसा मेरे मन में भी होगा ?) इस दुःख-सुख की अनुमति ही निरोध-भाव है, इसी के द्वारा भगवान् भक्त को लौकिक आसक्ति से बचाता है। ऐसा भाव जिसे प्राप्त हुआ, उसे निरोध प्राप्त हुआ। उसे कीर्तन और गुण एवं लीलागान ही करना रह जाता है। सूरदास ने आचार्य के निरोधतत्त्व को पूर्णतः पहचाना था और उन्होंने सूरसागर का टाँचा इसी के विकास के लिए खड़ा किया। नन्ददास ने निरोध की जो व्याख्या दी है—

दुष्ट नृपन को हरन अथोष
ताको बुधजन कहत निरोध

उससे तो यही समझ में आता है कि वे आचार्य के मूल सिद्धान्त से दूर जा पड़े थे। वास्तव में यह युग की विश्लेषण-प्रकृति की कृपा है कि नन्ददास ने 'निरोध' के कई प्रकार कहे हैं। दूसरे अर्थ हैं (१) विषयसुख और मोक्षसुख के स्थान पर शुद्ध प्रेम-सुख की प्रतिष्ठा, (२) भक्त को ईश्वरता का भाव होना भी निरोध है, (३) रासलीला का सौन्दर्य। इन अर्थों में 'मूलार्थ' में स्वीचातानी ही की गई है।

११—साधन

पीछे लिखा जा चुका है कि 'गोपीप्रेम' या 'परकीयाप्रेम' को नन्ददास कृष्ण-प्राप्ति का सर्वोच्च साधन मानते हैं। साधन की भेष्टतम व्याख्या 'भँवरगीत' में है। नन्ददास का भँवरगीत भी सिद्धान्त ग्रन्थ के अन्तर्गत आता है। यह सूरदास के भ्रमरगीत की तरह एक साथ विरह-भाव और ज्ञान पर प्रेम-मक्ति को विजय प्रतिपादित करनेवाला

प्रणय नहीं है। गुरुदास के मंत्रराजों के तीन पद्य हैं—(१) छादित्विह—
गोविधों का विद्वलम, (२) अण्णाम—मगवान् के प्रति कीर्तन का
निर्देयक समर्पण, (३) गीदानिह—ज्ञान और योग पर प्रेममार्ग की
विशेष। परन्तु गुरुदास का सिद्धान्तवाद भी ठम धेणी का नहीं है जिस
धेणी का नन्ददास का सिद्धान्तवाद है। गुरुदास विरहमूलक काश्चेत्कारं
के द्वारा प्रेममार्ग की विषय घोषित करते हैं, परन्तु नन्ददास निर्गुण-
सगुण का पचहा मुक्तभजने में तार्किक दार्शनिक की तरह लग जाते
हैं। इस तरह उनका प्रणय शुद्ध गीदानिहिक प्रंय हो जाता है।

इसीलिए प्रणय भूमिदा बिना ऊधो के उपदेश से ही आरम्भ हो
जाता है। ऊधो निर्गुणपद को उपस्थित करते हैं, गोविधों सगुणरव
को। ऊधो का निर्गुणपद इस प्रकार है—

वे तुम तैं नहि दूरि, ग्यान की आलिन देलौ
अलिल विश्व भरपूर, ब्रह्म सब रूप विसेलौ
सौह, दाह, पापान में, बल-यल माहि अकास
सचर, अचर, बरतत सरे, बौति ब्रह्म परकास -

मुनौ ब्रह्मविनी (३१—३५)

१—बह हृदयस्थ ब्रह्म है, और साथ ही

२—विश्वव्यापी ब्रह्म है। वे कहाँ नहीं ?

(गोविधों ब्रह्म और ज्ञान को नहीं मानती हैं, वे तो कृष्ण के मोहक
रूप पर मुग्ध हैं और प्रेम का क्षीघ्र मार्ग जानती हैं)

३—जिस रूप से उन्होंने ब्रजलीला की, वह तो 'सगुण' रू
बास्तव में वे निर्गुण हैं, निर्विकार, निलेंब हैं—

अन्युत बौतिप्रकास है, सकल विश्व की प्राण

- ४—वे ही अन्वृत, लीला-गुन के कारण अवतार धारण करते हैं ।
 ५—योग ही उनकी प्राप्ति का साधन है ।

गोपियाँ कहती हैं—

सब ही लौ सब कर्म है, सब लौ हरि उर नाहिं
 कर्मबंध सब बिरल के, जीव बिमुख है आदि

—सत्ता मुनि स्वाम के (७०)

गोपियाँ कहती हैं—

नेहहु हरि के रूप, खास मुख हैं जो निररै
 कर्म, क्रिया, आसक्ति, सबे पिछुसी मुधि बिसरै
 कर्ममय्य दूटैं सबे, किन्हुं न पायो देव
 कर्म-रहित ही पाइये, सार्ते प्रेम बिसेख

—सत्ता मुनि स्वाम के (११०)

कर्म और अकर्म, पाप-पुण्य सब बंधन हैं, प्रेम के आगे यह बंधन टहर
 नहीं सकता—

कर्म पाप अरु पुन्य, लोह सीने की बेरी
 पाइन बंधन दोड, खोड मानी बहुतेरी
 उँच कर्म हैं स्वर्ग है, नीच कर्म हैं भोग
 प्रेम बिना सब पचि मरे, बिपय-बाठना रोग

—सत्ता मुनि स्वाम के (८०)

गोपियाँ जानती हैं कि सब गुन कृप्य में ही हैं—

औ उनके गुन नाहिं, और गुन भये कहाँ हैं
 बीज बिना सब जमै, मोहिं गुन कहाँ कहाँ हैं

वा गुन की परछाँहि री, माया-दर्पन बीच
गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल वारि मिलि बीच

—सखा मुनि स्वाम के (१००)

गोपियों का प्रेम-दर्शन स्पष्ट है—

ओगी ओतिहि भजै, भक्त निज रूपहि जानै
प्रेमपियूषै प्रगट, स्वाम सुन्दर उरि जानै (८७)

उनके अनुसार मोहन गुन ही वेद-पुराणों का सार है, इसके सिवा कोई आत्मसिद्धि है ही नहीं (२६५—२७०)। निर्गुण का आचार सगुण ही तो है (२७५)।

पुष्टिमार्ग में मर्षादा, ज्ञान और कर्म का माध है। भगवान् की प्रेमासक्ति (कुल की लज्जा लोरि) ही साध्य है। गोपियों मर्षादा भेट कर ही कृष्ण को पाती हैं। नन्ददास ने हारे हुए उद्धव के मुँह से पुष्टिमार्ग के प्रेमतत्त्व को इस प्रकार कहलाया है—

जे देखें मरजाद मैटि, मोहन की भावै
क्यौ नहि परमानन्द, प्रेमशुद्धी की पावै
ग्यान जोग सब कर्म तैं, प्रेम परे है सर्व
हौ नहि पटतर देत हौ, हीरा आगे काँच

वियमता बुद्धि की (३२०)

इस प्रेमासक्ति की प्राप्ति मुख्यतः भगवत्कृपा (पुष्टि) पर अवलम्बित है। परन्तु फिर भी मनः की आत्मशुद्धि तो बाह्यनीय है ही। बुद्धिवा ग्यान का नाश और मन की शुद्धि से ही इस प्रेम की प्राप्ति होती है (२२०)। इसके लिए कुछ साधन भी कहे गये हैं। वे हैं—
(१) नाम-जप (२) कर्षितन (३) गुनगान (४) मोती-प्रेम (विरह) का आत्मानुभव। अथवा गौड साधन हैं, मुहूर्त्त और

सत्यसंग (साधु-संग) । ऊपर के चारों साधन क्रमशः उत्तरोत्तर भाव-विलास के द्योतक हैं । नन्ददास ने एक पद में विट्ठलनाथ द्वारा प्रचारित भक्तिमार्ग के प्रकारों को इस प्रकार लिखा है—

पुष्टि मर्यादा भजन रस सेवा निजजन पोषण भरणं
नन्ददास प्रभु प्रकट रूप धर भो विट्ठलेश गिरिवर धरणं

इन पुष्टि, मर्यादा, भजन, रस, सेवा के ५ मार्गों में से नन्ददास की आसक्ति रसमार्ग की ओर अधिक थी ।

नन्ददास का पदावली साहित्य (गीति-काव्य)

नन्ददास का पद-साहित्य अपेक्षाकृत कम है। अष्टछाप के कवियों में सबसे अधिक गीति-काव्य सुरदास ने लिखा है, इसके बाद परमानन्ददास, कृष्णदास आदि का नम्बर आता है। फिर नन्ददास हैं। नन्ददास अपने पदों के लिए न प्रसिद्ध हैं, न उनके पद साहित्यिक एवं सांप्रदायिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण हैं। उनका महत्व उनके भैरवगीत, रासपरिवाधाया, सिद्धांतपरिवाधाया और पञ्चमञ्जरी ग्रंथों के कारण है जो खंडकाव्य या कथात्मक काव्य और सिद्धांत-ग्रंथों की श्रेणी में आते हैं। इन ग्रंथों की काव्य-सम्पदा की विवेचना हमने पिछले अध्याय में की है।

परन्तु नन्ददास के गीतिकाव्य (पदावली) का अध्ययन अन्य दृष्टि से किया जा सकता है। अष्टछाप के कवि अन्धे गायक भी थे और यह गुण नन्ददास में भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। अतः संगीत की दृष्टिसे तो वे सफल काव्य के प्रणेता हैं ही, परन्तु हमें उनके पदावली साहित्य के अध्ययन से अष्टछाप की रचनाओं में सुरदास के प्रभाव और विठ्ठलनाथ के सम्प्रदाय-निर्माता के रूप का प्रमाण मिलता है।

सुरदास के पदों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वल्लभ-कुल (अष्टछाप) के सब कवियों से उनमें सम्प्रदाय की छाप बहुत कम है। इस 'छाप' की कमी का संकेत हमें 'वार्ता' में दिए हुए सुरदास के अंतिम समय के उद्गार से भी मिलता है। जब सुरदास

रसौली में मृत्युशय्या पर थे तो कृष्णदास ने उनसे प्रश्न किया है कि उन्होंने गुरु की प्रशंसा में कुछ क्यों न कहा ? इसके उत्तर में रूदास ने अपनी सारी रचना को ही गुरु-प्रसाद बतलाया और यह द गया—

भरोसो हृद् इन चरनन केरो

भीवल्लभ नखचन्द्र छटा बिन सब षग मॉक अँधेरो

साधन और नहीं या कलि में जासो होत निबेरो

एर कहा कई दुखिष अँधरो बिना मोल को चेरो

ए पद को छोड़कर रू ने गुरु-वंदना के नाम पर बहुत कम, प्रायः नहीं ही, कहा है। विठ्ठलनाथ के समय में गुरु की मान्यता बढ़ी। नन्ददास विठ्ठलनाथ की पीढ़ी में थे, रूदास वल्लभाचार्य की पीढ़ी में—उनसे एक पीढ़ी बढ़े। अतः रूदास के साहित्य में विठ्ठलनाथ की “अष्टछाप” की गुणछाप कुछ भी नहीं मिलती। नन्ददास ने तो कितने ही पदों में गुरुवन्दना की है जैसे—

प्रातः समं भीवल्लभ-मुग को उठतहि रचना लीबे नाम

आनँदकारी, मंगलकारी, अनुमहरन जन पूरन काम

हरलोक परलोक के बन्धु, को कहि सके तिहारि गुन-ग्राम

‘नन्ददास’ प्रभु शिबकशिरोमनि, रात्र करी गोकुल गुलधाम

गुरु-भिता, समुदाय के आदि प्रवर्तक, भीवल्लभ के लिए भी उनके लिए इससे कम भद्रा नहीं है, जितनी राम के लिए तुलसी के हृदय में है। वे तुलसी की ही श्लोक-शैली में करते हैं—

अपति क्विनीनाथ, परमावतिपति, विप्रकुल-द्वेष, आनन्दकारी

दीप-वल्लभ-वंश, जगत निरन्तर करन, कोटि उदुरात्र सम तात्रहारी

अपति भक्तिपति, पठितसाधन-वरन, कामीजन कामना पूर्णकारी

मुक्ति-कोदीप-जन, भक्तिदाहक प्रभू, सबल सारंग गुनगनन भारी

अपति सकल तीरथ कसै, नाम मुनिरन भाव, बाध बध निवृ गोकुल शिहारी

'नन्ददास' नाथ पिता गिरिधर आदि, प्रगट अवतार गिरिरामचारी
(२८४-२८८)

विठ्ठलनाथ के समय में यह गुदमान्यता इतनी तीव्र थी कि गुह्र को 'कृष्ण' का स्थान मिल रहा था। जन्म, बचपन, पालना, रिबौला, बाल-लीला—वल्लभ और उनके पुत्र कृष्ण के स्थान में रख लिये गये थे और रचनाएँ हो रही थी। इसी प्रकार जागरण, शयन आदि निरुत्साहों में वल्लभ और विठ्ठल-भक्ति का आरोपण था जैसे—

प्रातः समय श्रीवल्लभ-मुत को पुण्य पवित्र विमल यश गाऊँ
मुन्दर मुमग बदन गिरिधर को निरलि-निरलि दग-दगन सिराऊँ
मोहन मधुर बचन श्रीमुख के भवण मुनि-मुनि हृदय बसाऊँ
तन-भन-प्राण निवेदि वेद विधि यह अनुनपो हो मुमल कराऊँ
रहौ सदा चरणन के आगे महाप्रसाद उन्दिष्ट पाऊँ
नन्ददास यह मांगत हो श्रीवल्लभकुल को दास बहाऊँ

लक्ष्मण घर आज्ञा बाज्रत बघाई

पूरन ब्रह्म प्रकट पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ मुखदाई
नाचत तरुण बृद्ध और बालक उर आनन्द समाई
जय जय यश बन्दीजन बोलत विप्रन वेद पदाई
हरद दूब अक्षत दधि कुंकुम आंगन बीच मघाई
बंदनमाला भालिन बाँधत मोतिन चौकु पुराई
फूले द्विज बरदान देत हैं पट भूषण पहाराई
मिट गये ब्रह्म नन्ददास के मनसांक्षित फल पाई

गुह्रभक्ति के उदाहरण के तो अनेक पद मिलते हैं, जैसे—

श्रीविठ्ठल मंगल-रूप-निधान

कोटि अमृतसम हैंस गुरु बोलन सबके जीवनपान

भजो श्री वल्लभमुत के चरण-

नन्दकुमार भजन मुखदायक पतितन पावन करण

दूरि किये कलि कपट वेद निधि मत प्रचंड विस्तरण

अति प्रताप महिमा समाज यद्य शोकज्ञाप मयहरणं
पुष्टि मर्यादा मञ्जन रस सेवा निज जन पोषण भरणं
नन्ददास प्रमु प्रकट रूप धर श्रोविट्टलेश गिरिवर धरणं

पुष्टिमार्ग में यमुना का बहुत महत्व है। वल्लभाचार्य और विट्टलेश दोनो ने यमुनाष्टक लिखे हैं। उनके अनुसार यमुना

१—भीकृष्ण की प्रीति को बढ़ानेवाली है

(सुकुन्दरतिवर्दिनी २)

२—भीकृष्ण की चौथी पटरानी है

(कृष्णतुर्प मिमान् ३)

३—कृष्ण-रूप है

(अनंत गुण भूपिते शिवविरंचि देवधृते

घनाघननिभे अदा प्रुव पराशराभीष्टदे

विशुद्ध मधुरासटे सकल गोपगोपी हृते

कृपात्रलाधि संभिते मममनः सुख भावयः । ४

कृष्ण के सब गुण यमुना में संस्थापित हैं)

४—यह हरि को प्रिय है

(प्रियो भवति सेवनास्य हरेर्व्या गोपिकः ६)

५—भीकृष्ण की बलकेलि के कारण अन्य है

(सकल गोपिका संगम रमरभम अलाशुभिः सकलवाचयैः संगमः)

नन्ददास और अन्य पुष्टिमार्गीय कवियों की कविता में भी यमुना-
वर्णन और यमुना-अर्पण के सुन्दर पद मिलेंगे, जैसे—

१. भक्त पर कर कृपा यमुना देखी .

छाँड़ि निज भाम विभाम भूतल क्रियो प्रकट लीला दिलाई ओ तैवं
परम परमार्थ कारण हे पवन को रूप अद्भुत देत साव जैहाँ
नन्ददास ओ आनि दृढ़ चरण गहै एक रचना कहा कहूँ पैतो

२. नेह कारण यमुना प्रथम आई

भक्त की चित्त-वृत्ति सब आनही ताहि तैं अति ही आनुर ओ आई

३. यमुने यमुने यमुने गावो

शेष छहस मुस गावत निशिदिन पार नही पावत ताहि पावो

४. भाग्य सौभाग्य यमुना ओ दे री

बात लौकिक तेज पुष्टि यमुना भजे लाल गिरिधरण को ताहि बर मिलै री
मगधरी सब करि बात उनकी हो सरा साभिष्य रहे केलि मैं री
'नन्ददास' को आदि बल्लभ-कृपा करे ताके यमुना सरा बच को रहे री
विठ्ठलनाथ के समय में उतमवी आदि के मनाये जाने की खान बनो—
इसके लिए नैमित्तिक कीर्तन गाये जाने लगे। ऐसे कई उतमों से
सम्बन्धित पर हमें नन्ददास की नामछाप से मिलते हैं। एक है, पर पर
नैमित्तिक कीर्तनों के लिए ही बनाये गये हैं। तिन उतमों के सम्बन्ध
से ये पर हैं, ये हैं—१ अन्नवदुनीवा, २ मनमोर, ३ रमबाबा, ४ रघु-
बंघन, ५ आग, होनी, आषाढ, ६ हिंडोल, पूलडोल, पटा, ७ राम।
इनके अनिदिक कृष्ण के अंग और वापसिदास से सम्बन्धित अनेक
पर गये गये हैं, जैसे—अमोहन पर, इस अमोहन पर बधाई, टाढ़ी
के पर, पालना आदि के पर गाये जाते थे। टाढ़ी के पर गुरदास से
भी है और नन्ददास उन्हीं से सम्बन्धित हुए हैं। वास्तव में अनेक
कृष्ण अंग के इन आचार-विचारों के साथ त्रिप बीरन में रहते मिले
लौकिक कृष्ण प्रसिद्ध हो चुके थे। ऐसे नैमित्तिक कीर्तनों के समय
गाये जानेवाले पदों के कुछ उदाहरण देकर हम इन प्रसङ्ग को जाने
बढ़ावेंगे।

अक्षयतृतीया

चंदन पहर नाव हरि बैठे संग शृपमान दुलारी हो
 यमुना पुलिन शोभित तहाँ खेलत लाल बिहारी हो
 त्रिविध पवन महत सुखदायक सीतल मंद सुगंध हो
 कमल प्रकाश कुसुम बहु फूले जहाँ राजत नंदनंद हो
 अक्षयतृतीया अक्षयलीला संग राधिका प्यारी हो
 करत बिहार सब सखी सौं नन्ददास बलिहारी हो

गनगोर

छुबीली राधे पूज लेनी गनगोर

ललिता विद्यासा सब मिलि निकषी आइ शृपमान की पौर
 सधन कुञ्ज गहवर वन नीके मिल्यो नन्दकिशोर
 नन्ददास प्रभु आये अचानक घेर लियो चहुँ ओर

रथयात्रा

देखो माई नंदनंदन रथ ही विराजे

संग सोहे शृपमान - नंदनी देखत मन्मथ लाजे
 मजबन सब मिलि रथ खँचत है शोभा अद्भुत छावे
 सीतल भोग धर करत आरती नन्ददास गुण गावे

रत्नावंधन

राखी नंदलाल कर सोहे

पंचरग पाट के फुँदना राजत, देखत मन्मथ मोहे
 आभूषन हीरा के पहिरे लाल पाट के पोहे
 'नन्ददास' भारत तन-मन-धन गिरिधर भीमुख जोहे

फाग, होली

आज हरि खेलन फाग बनी

इत गोरी रोरी मर भोरी उठ गोकुल को धनी

चोवा को टोवा कर राख्यो केसर कीच बनी
 नन्ददास प्रभु संग होरी खेलत मुरमुर बात अनी
 राधा बनी रंगमरी होरी खेले अपने प्रीतम के संग ॥ टेक ॥
 × × काहू पे अरराजा रंग की काहू पे केसर को रंग ।
 कोउ गोरी मृगमद लिये होत अमर वहाँ पंग ॥
 तिनमें मुकुटमनि लाडिली सोहत अति मुकुमार ।
 लटक चलत ज्यों पवन तें कोमल कञ्चन डार ॥
 पिय कर पिचकारी देख के त्रिय नयना छवि सो दराय ।
 खंबन से मानो उड़हि चलेंगे टरक मोन बहे जाय ॥
 करत पिय जब त्रियन को जो मन उपजे आनंद ।
 मानो इन्दु मुधाकर सींचत जो कुमुदिन को वृन्द ॥
 भीजे बसन तनतन लपटाने बरनत बरन्यो न जाय ।
 उपमा देन न देत नयन राखे हाहा खाय ॥
 रंगरंगीली राधिका रंगरंगीली पीय ।
 यह रंगमीने नित्य बसो नन्ददास के हीय ॥

फूलदोल

डोल मुलायत सब ब्रह्ममुन्दरी भूलत मदनगोपाल
 गावत पाग धमार हरल भर हलधर और सब ग्वाल
 मूलै कमल केतकी कुंजो गुंजत मधुर रवाल
 धंदन बंदन चोवा द्विरकत उड़त अबीर गुलाल
 भावत बेणु बिग्याण बाँसुठी बप मुरंग और ताल
 नन्ददास प्रभु के संग विलसत पुण्यपुंज ब्रह्मवाल

द्विदोल

मारि फूलन को द्विदोरो बन्यो फूल रही मधुना
 फूलन के समे दोउ फूलन की बाँधी धार

फूलन की चौकी बनी हीरा जगमगना
 फूले अति बंसीवट फूले हैं यमुना तट
 सब सखी मिलि गावें मन भयो मगना
 फूल सखी चहुँ ओरें थोरें थोरें
 नन्ददास फूले जहाँ मन भयो मगना

इन उत्सवों के अतिरिक्त नित्य-सेवा में कृष्णलीला के पद बराबर गाये जाते थे, जैसे मंगला के समय दान, पनघटलीला और खंडिता के पद; म्वाल के समय बालकृष्ण की शोभा के पद; राजभोग के समय बनबिहार और क्लेष्ट के पद। नन्ददास के काव्य में इन विषयों पर कितने ही पद मिलते हैं, परन्तु उन्होंने सूरदास की भाँति सम्बद्ध रूप से दानलीला, पनघटलीला और खंडिता आदि प्रसंगों पर रचनाएँ नहीं कीं। कीर्तन करने का काम पहले कृष्णदास को सौंपा गया था, फिर सूरदास को। जब सूरदास कहीं चले जाते थे, तो नन्ददास को कीर्तन का भार सौंप जाते थे। यह फुटकर प्रसंगगतक पद इसी प्रकार रचे गये होंगे। उनमें न उतना चमत्कार है जितना सूर के पदों में, न उतना लीला-रस। परन्तु कुछ ऐसे विषयों पर भी नन्ददास के पद मिलते हैं जो साधारणतः सूर में नहीं मिलते। बल्लभकुल में राधा-कृष्ण की नित्य परिशीला है, परकीया नहीं, अतः उनका लग्नोत्सव और विवाहोत्सव भी मान्य है। इसीसे हम नन्ददास के काव्य में ऐसे गीत पाते हैं, जैसे—

१. सजनी उर आनन्द न समाऊँ

बरसाने रूपमान लगन लिलि पठई हे नन्द गाऊँ
 धौरी धूमरी धेनु विविध रंग शोभित ठाऊँ ठाऊँ
 भूषण मणिमय पार नाहिं ते सो धन देख लुभाऊँ
 नन्ददास लाल गिरिधर की दुलहिन पर बलि छाऊँ

२. दूल्हा गिरिधर लाल छुबीलो दुलहिन राधा गोरी बू
 जिन देखत मन में बिय लाजत ऐसी बनी है जोरी
 रत्नघटित को बन्यो सेहारो उर मोतिन की माला
 देखत बदन श्यामसुन्दर को मोहि रही ब्रजवाला
 मदनमोहन राजत घोरा पर और बराती संग
 बाजत टोल दमाम चहुँ दिशि ताल मृदंग उपंग
 जाय जुरे कृपभान की पौरी उत तें सब मिल आए
 टीको करि आरती उतारी मंडप में पघराए
 पढ़त वेद चहुँ दिश विप्रजन भये सवन मन भाए
 हयलेवा करि हरि राधा सों मङ्गलचार पढ़ाए
 ब्याह मयो मोहन को जवहीं यशुमति देत नभाई
 चिरजीयो भूतल यह जोरी नन्ददास बलि आई

इनमें राधा-कृष्ण के दुलहा-दुलही रूप का वर्णन है। जब हम
 हैं कि सूरसागर में स्पष्टतः कृष्ण-राधा के विवाह की कथा गाई
 है, तो पुष्टिमार्ग और परवर्ती काव्य पर सूर के प्रभाव को
 सकते हैं।

नन्ददास के पदों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है
 उन्होंने कृष्ण-कथा को उस प्रकार कथात्मक गीति-काव्य के रूप
 नहीं लिखा, जिस प्रकार सूरदास ने लिखा है। वे दशमस्कन्ध में
 प्रकार की कथा मागवत के आधार पर कह चुके थे। जैसा हम अन्य
 बता चुके हैं उनमें नवीन कथासृष्टि की मौलिकता भी नहीं थी। अतः
 उन्होंने न कृष्ण-कथा को कथारूप में लिखा, न कथा के सब प्रसंगों
 पर गीत गाये। अलौकिक प्रसंगों में केवल गोवर्द्धनलीला पर दो एक
 पद मिलते हैं—

कान्ह कुँवर के कर पल्लव पर मानो गोवर्द्धन राय करै
 क्यों क्यों तान उटत मुरली की क्यों क्यों साजन अथर धरै

मेघ मृदंगी मृदंग बधावत दामिनि दमक मानो दीप घरे
 म्वाल ताल दे नीके गावत गायन के संग मुर जो भरे
 देत असीस सकल गोपीजन बरखा को जल अमित भरै
 अति अद्भुत अवसर गिरिधर को नन्ददास के दुःख हरै

राजे गिरिराज आब ग.य गोप जाके तर
 नेक सी बानिक बने प्रेरे मेख नटवर
 लियो हे उठाय ब्रजराय के कुंवर कर
 अरग धरग राखयो मुरली की पूँक पर
 'बरसे प्रलय के पानी न जात काहूँ पै बखानी
 ब्रबहू ते अति भारी दूटत है तर तर
 तापर के खगभृग चातक चकोर मोर
 बूँद न काहूँ के लागि भयो हे कौतुक भर
 प्रभु जू की प्रभुताई इंद्रहू की जइताई
 मुनि हँसे हेर हेर हरि हँसे हर हर
 नन्ददास प्रभु गिरिधारी जू की हाँसी खेल
 इंद्र को गर्व गयो भये हे दूर घर

परन्तु अधिकांश पद उन्हीं प्रसंगों पर हैं जो या तो सम्प्रदाय के नित्य और नैमित्तिक कीर्तन के लिए मान्य थे, या जिनमें काव्यरस की दृष्टि से नन्ददास की गृह्यारिक रुचि रुचि ले सकती थी। दूसरे प्रकार के कई प्रसंग हैं—पनपटलीला, दानलीला, रास, पाग, खंडिता, मान और मानमोचन। जिन साम्प्रदायिक प्रसंगों का सम्बन्ध उपरोक्त विषयों से है जैसे दिंडीला, फूलडोल आदि, वे भी अच्छे बन पड़े हैं।

नन्ददास ने बाललीला पर बहुत कम पद लिखे हैं, यद्यपि उनका पदान्ततः अभाव नहीं है। इन रचनाओं पर भी सूरदास का प्रभाव

कबहुँक पलना मेलि मुलावति, कबहुँक अस्तन पान करावति
'नन्ददास' प्रभु गिरिधर कौ रानी निरखि निरखि सुख-पावति
सूर के इस पद से तुलना कीजिये—

अमुमति लै पलिका पौढ़ावति

मेरी आज अतिहि विरुभानौ यह कहि मधुरे सुर गावति
पौढ़ि गई तब हरसे करिके अंग मोरि तब हरि अमुहाने
कर सौ ठोकि मुतहि हुलरावति चटपटाइ अत्रुराने

नन्ददास ने बन से लौटते हुए कृष्ण का चित्र इस प्रकार उपरिधत किया है—

बन तैं आवत गावत गौरी

हाथ लकुट गैयन के पाले टोटा अमुमति कौ री
सुरली अघर धरे नन्दनन्दन, मानौ लगी ठगौरी
याही तैं कुलकानि हरी है, ओढ़े पीत पिछौरी

सूरदास लिखते हैं—

हरि आवत गाहन पाछे

मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल नयन विद्याल कमलतैं आछे
सुरली अघर धरन सीलत हैं बनमाला पीताम्बर काछे
ग्याल-बाल सब बरन-बरन के कोटि मदन के छवि कियौ पाछे

इन उद्धरणों के बाद नन्ददास की पदावली पर सूरदास के प्रभाव के सम्बन्ध में ज़रा भी सन्देह नहीं रह सकता । अन्त में हम सूर की शैली से मिलती हुई नन्ददास की दो रचनाएँ उद्धृत करते हैं—

१—सुन्दर श्याम पालने भूले

अमुमति माय निकट अति बेठी निरखि-निरखि मन पूले
मुमुना लेके बनावत रुचि सौ लाल ही के अनुमूले

पीक भलकन सौँहैं सरस्वती ऐनी
परम पावन देखि मदन त्रिवेनी

(राधा का रूप वर्णन दूती के मुख से—विद्यापति की इस प्रकार की रचनाओं से भी तुलना कीजिये)

किर भी अधिकांश पदों में न कला का वह रूप निस्तरता है, न माया का, जो भँवरगीत, रासपञ्चाध्यायी आदि प्रौढ़ रचनाओं की विशेषता है। ज्ञान पढ़ता है, नन्ददास ने अधिक पद दीक्षाकाल के कुछ बाद ही लिखे हैं। उनमें सूरदास की गुरु-छाप पग-पग पर दिललाई पड़ती है। कुछ तो उनकी भाषा में तत्सम शब्दों का उतना प्रयोग नहीं जितना सूर के पदों की भाषा में, कुछ उनका प्रारम्भिक अभ्यास काल—ये रचनाएँ सूर के काव्य से परिचित व्यक्ति को कुछ छपपटी लगती हैं। यही नहीं, स्वयं नन्ददास के प्रौढ़तम काव्य से परिचित पाठक उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखेगा।

नन्ददास के पद-काव्य में विरह के पदों का नितांत अभाव है परन्तु जो नन्ददास के सिद्धान्त से परिचित हैं वे जानते हैं कि देशान्तर विरह (प्रवास) उन्हें मान्य ही नहीं है, अन्तर विरह में इतनी तीव्र वेदना नहीं हो सकती, जितनी मधुरा-गमन में। पलकांतर विरह को अक्षर्य स्थान मिला है जैसे—

देखन देत न डेरिन पलकें

निरलत बदन लाल गिरिधर को बीच परत मानो वन की ललकें
बन तें छु आवात वेणु बजावत गोरम मंडित रावन अलकें
माये मुकुट भवण मणि कुंडल ललित कपोलन भरोई मलकें
ऐसे पुल देखन को सभनी कहा कियो यह पुल कमल के
'नन्ददास' सब बदन की यह गति मीन मरत धारें नहि बल के

नन्ददास की भक्ति

भक्ति का अर्थ है शुद्धात्मक, भावुकतामय, विरोध व्यक्तित्व के प्रति आत्मसमर्पण । यह एक धार्मिक एवं आध्यात्मिक स्थिति है । श्रृंग्येद के साहित्य में ही हम इन्द्र, वरुण, प्रजापति इत्यादि देवताओं के प्रति भक्ति के चिह्न पाते हैं । परन्तु उपनिषदों में भक्ति का स्थान आत्म-चित्तन और उपासना (गुरु के पास रहकर साधना) ने ले लिया । उस समय से भक्ति के दो रूप हो गये, एक आत्म-चित्तन-मूलक ज्ञान-कर्मकाण्ड-प्रधान, दूसरा भावुकतामय ।

ज्ञान पड़ता है भक्ति के जिस रूप से आज हम परिचित हैं, वह बौद्धकाल की वस्तु है । धीरे-धीरे बुद्ध का मानवीय व्यक्तित्व लोप हो गया, और उनके प्रति प्रेमभाव ने भक्ता की बलवती भावना को और भी विकसित किया । महायान में इस भक्ति का पूरा विकास हुआ । बौद्ध मंदिरों और विहारों में बुद्धों, अवलोकितेश्वर और वज्रसत्व की मूर्तियाँ स्थापित की गईं, और गीत और गान के साथ उनकी नित्य पूजा चली । यह महायान जब धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के सामने पराजित हुआ, तो वह पहले अग्रणी अनेक संस्थाओं का प्रभाव हिन्दू मतवाद पर छोड़ चुका था । भक्ति की संस्था भी इनमें एक है ।

ईसवी शताब्दी दो में वैष्णव धर्म का पुनरुत्थान हुआ उस समय गुप्त राजाओं ने 'महावैष्णव' की उपाधि धारण की । विष्णु विरोध पूर्ण हुआ । उनके मन्दिर भी स्थापित हुए । परन्तु शिव, ब्रह्मा आदिकेय, सूर्य आदि अनेक देवी-देवता भी इसी समय जनता के अनेक



भारत में विशेष रूप से हुआ, परन्तु बाद की विष्णु भक्ति दक्षिण में ही विशेष विकास को प्राप्त हुई। १०वीं शताब्दी में वैष्णव भक्ति फिर उत्तर भारत में आई। दक्षिण के अलवार भक्तों से प्रभावित आचार्य उत्तर भारत के मध्ययुग की भक्ति के आदि प्रवर्तक हुए। परन्तु इस सारे काल में वैष्णव-भक्ति का उत्तर भारत में भी काफी महत्व था। यद्यपि राजाभय शिव भक्ति और शक्ति-भक्ति को ही प्रथम दे रहा था। बंगाल शाक्त था। राजपूतों का परिचय और मध्यभारत में प्राधान्य था, वे शिव के उपासक थे। कुछ राजपूतों में भवानो (शक्ति) की सेवा चल रही थी। बंगाल में महायान की उच्चार्थिकारिणी अनेक देवियों की पूजा-भक्ति चल रही थी।

मुसलमानों के आने से दो शताब्दियों पहले से भक्ति के एक नये रूप की प्रतिष्ठा हो गई थी। इसका आचार या विष्णु के अवतार राम और कृष्ण। दोनों की भक्ति में अन्तर था—एक में सेवक-सेवा भाव की प्रबलता थी, दूसरी में माधुर्य भाव की। इन दो भक्ति शालाओं का प्रवर्तन दो संस्कृत ग्रन्थों से हुआ। राम भक्ति अध्यात्म रामायण से, कृष्ण-भक्त मागवत से। परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि ये ग्रन्थ पूर्ण विकसित रूप में प्राप्त हुए। १ली शताब्दी से १०वीं शताब्दी तक अनेक पुराण और काव्य रामकृष्ण-कथा को विकसित कर चुके थे और इन्हें विष्णु के श्रेष्ठतम अवतारों के रूप में उपास्य माना जा चुका था। परन्तु १०वीं शताब्दी तक के रामकृष्ण-ग्रन्थों संस्कृत साहित्य में यह स्पष्ट हो जाता है कि तब तक जनता में इन अवतारों के प्रति वह प्रगाढ़ भक्तिभावना नहीं उत्पन्न हुई थी जो बाद में प्रकटाटत हुई। संस्कृत में कृष्णकाव्य पर सामग्री केवल पौराणिक कथाओं के रूप में मिलती है, महाभारत और भाग के कुछ नाटकों में अथर्व कृष्णलीला को विषय बनाया गया है। राम-सम्बन्धी साहित्य प्रचुर है—रूप-वैभिन्य और मात्रा दोनों में। महाकाव्य, गद्यकाव्य, चंपू, नाटक, इन सभी साहित्यिक रूपों में राम-सम्बन्धी

की प्रतीति है, यह हम नहीं कह सकते। परन्तु उन्होंने कभी भी लोचियों के भाव का उल्लेख नहीं किया। उन्हें 'भक्ति' का अर्थ 'समास-रूप लक्ष्मी' कहकर उनके काम-भाव का परिहार ही किया है। इससे तो वही समझ सकता है कि वे मधुर भक्ति को नहीं मानते, यद्यपि वैश्या के मित्र होने के नाते उनके स्वभाव और साहित्य से वे विशेष रूप से परिचित रहे होंगे। उन्होंने बराबर का मुख्य भाव 'पुष्टि' होना चाहिए। वह अपने को मगवान की कृपा पर डाल दे, वही उसका योग्य करेगा, उसके भक्ति-भाव को बढ़ा करेगा, और अनायास ही परिधम विगत कर उस मगवान से छूटेगा। बाद की सम्प्रदाय में किन-किन प्रभावों के कारण शृंगारभक्ति की प्रधानता हो गई, यद्यपि पूर्वोक्त बालकृष्ण का ही चलता रहा, यह हम अल्प समय में नहीं कह सकते हैं।

इस प्रकार नन्ददास का सम्प्रदाय में दीक्षित हुए तो उसमें भक्ति के तीन रूप प्रतिष्ठित थे—

(१) वात्सल्य

(२) लस्य

(३) मधुर या रति

नन्ददास का जीवन वृत्तान्त से यह स्पष्ट है कि उनमें रक्तिका की मात्रा विशेष थी। वे बालक के हावभाव पर रीझनेवाले पुरुष नहीं थे, उनकी सहृदयता शृङ्गार वर्णन में ही उमड़ता था। वे पहले दास्य भाव के भक्त थे, परन्तु उनका मन इस प्रकार की भक्ति में नहीं लगता था, वे तब भी नाटक-नमो देखते थे। वे मात्रा के टंग के स्वांग-मैत्रुण्य रहे होंगे। इसीसे वात्सल्यरस की भक्ति की अधिक रचनाएँ उनके साहित्य में नहीं मिलतीं। वे नन्ददास के शिष्य थे। इस नाते, कुछ सम्प्रदाय की बाल-भक्ति के अनुरोध से कुछ सुन्दर पद अवश्य होने लगे—

आज सिंगार स्वामसुंदर को देखे ही बनि आवे
 स्वाम पाग अरु स्वत चोलना छूटें पद मुहावे
 मोतिन माल हार उर ऊपर, कर मुरली लु बजावे
 'नन्ददास' प्रभु रविक कुंवर को लै उल्लंग हुलरावे
 यहाँ भी बालकृष्ण "प्रभु रविककुंवर" ही है, 'नवनीतप्रिय' नहीं।
 एक पद है—

सुगन मगन घारे कन्देया नैकु उरे धो आउ रे लाला
 बन में गोलन भात लाल हूँ रहे सब मलीन गात
 अपने लाल को लेहुँ बलाय रे लाला
 संग के लरिका सब पनि टनि आये यो कहेंगे
 येभी हे तेरी माय रे लाला
 यशोदा गहत प्राय रेयाँ मोहन कत ग्देषाँ ग्देषाँ
 नन्ददास बलि चाय रे लाला

एक दूसरे पद में उनका बालकृष्ण (नन्दसुवन) में भक्ति-भाव स्पष्ट रूप में प्रकट है—

नन्दभवन को भूषण माई

यशोदा को लाल बीर हलधर को राधारवन मुलदाई
 हृद्र को हृद्र देव देवन को ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई
 काल को काल ईश ईशान को बरगु को बरगु महाबदाई
 शिव को धने संतन को सर्वेश महिमा बेड पुगएन माई
 नन्ददास को जीवन विरिधर गोकुलमदन कुंवर कदाई

एक अन्य गीत में वे बालकृष्ण भी श्रीहार्मि के नाते ही नन्ददास में
 ईना चारते हैं—

नन्द नाम नीकी लागत ही

प्राय लमे हरि मयत स्वामिनी मुनन मधुर भनि गुणन ही
 भय होनी भय स्वत जिनके मोहन उर लागत ही
 हलधर संग स्वाम सब राजत विरिधर ले ले हरि भागत ही

जहाँ बसत मुग्धेश महानुनि एको पल नहीं त्यागत ही
 नन्ददास को वह कृष्णदत्त गिरिधर देने मन लागत ही
 परन्तु मुग्ध रूप में नन्ददास मधुर-मन्त्रि को ही लक्षण बनाकर
 है यद्यपि एकाच ब्रह्म मज्ज-मन्त्रि भी मिल सकती है जैसे—

माई री प्रातःकाल नन्दनाल पाग रँषावन
 बाल दिग्बावन दर्पण माल रङ्गो लखि
 मुग्धर नय करन बीच मंजु मुकुर की छवि रही कवि
 मानो गहि आप्यो हे मुग कमलन शशि
 बिच बिच चित के चोर मोरचन्द्र माये दिए
 तिन दिग रत्नयेच बाँधत हे कस
 नन्ददास ललितादिक छांट मये
 अबलोकित अटुलित छवि कहि न जात फूल भरे हँस

भारतव में सख्य-मन्त्रि और मधुर-मन्त्रि में विशेष अन्तर नहीं था
 सख्य-मन्त्रि में भक्त कृष्ण का सखा बन जाता था, और इस प्रकार
 अपने सख्य-भाव के कारण कृष्ण की गोप्य से गोप्य लीलाओं में भा
 लेता था। कृष्ण की ये लीलाएँ उनका राधा और गोपियों से शृंगारि
 हासविलास, फाँड़ा, केलि, आलिंगन-परिरंभन-चुबन-रति आदि हैं
 हैं। इनमें भाग लेने के अधिकारी था तो ललितादि राधा की सखियाँ
 या 'अष्टसखा' हैं। हम जानते हैं कि प्रत्येक अष्टसखा का एक
 कृष्णसखा से तादात्म्य कर दिया गया है। भी द्वारकानायकी
 का छाप्य है—

सूरदास सो तो कृष्ण ताको परमानन्द जानो
 कृष्णदास सो श्रुपय छीतस्वामी सुबल बखानो
 अर्जुन कुभनदास, चक्रभुवदास विशाल
 विष्णुदास सो भोजस्वामी गोविन्द भीदामा लाल

की। वास्तव में 'वह जो मान को बनाती' होने वाले के लिए मन्दारक के रूप की 'मा' तक का, की-न में टूट के।

शान्ति मन्दारक को छोड़ें भी बहुत ही मूल नहीं मन्थन कि उनसे "विषय, स्वयम्, स्वभाव" मन्दारक को बनाता विना बनाए। यह विषय-मूल भक्ति मन्दारक का विषय भी। इसे ही हम मूल-भक्ति या मूल भक्ति कह सकते हैं।

साधारण भक्ति और शूद्रा-भक्ति में महान् अन्तर है, मन्दारक के रूप को मन्दारके के लिए हम अन्तर का मूल मूल हृदयगत का सेवा करीबने। भक्ति को हम मन्दारक एक रूप कह सकते हैं। मन्थन में इनका सेवा मन्थन साधारण में है। साधारण के लक्षण स्वयम् और बोधन है। इन तीनों का मन्थन मन्थन है। इन प्रकार साधारण भक्ति-साधारण में इन तीनों का मन्थन होगा। इनमें बोधन-रूप साधारण-भाव में मन्थन को प्रकृत है। और शूद्रा रूप में प्रकृत और निर्माण की प्रकृत है। साधारण रूप मन्थन मूलक है, प्रकृतियों को उत्तम सेवा नहीं मिलता। मन्थन भक्तिरूप की वह मन्थन है। वास्तव में बोधन और प्रकृत से गुजर कर साधारण में होता हुआ भक्त भक्तिरूप को प्राप्त होता है।

शूद्रासाधारण भक्ति का पहला उद्रेक कबीर में मिलता है। वे भक्तिसाधारण साधारण से प्रेमिका का नाम बोधने हैं और उनके विरह-मिथन के गीत गाते हैं। वास्तव में कबीर के भक्तिरूप में मन्थन के अनिच्छित भी अनेक साधारणिक प्रकृतियाँ मिलेंगी। उनमें वे भी लगभग यही प्रकृतियाँ कम अधिक मिलेंगी, मन्थन देना। स्वयं प्रकृति के कारण अस्तित्व-स्थापना का अभाव है। राम के प्रति जो इनका तीव्र आकर्षण है, वह ठीक उस तरह अस्तिभाव के अन्दर नहीं जाता जैसे कबीर का राम के प्रति आकर्षण, यद्यपि रामचरितमानस की समाप्ति पर वे कहते हैं—

कामिहि नारि पिबारि जिमि × × प्रिय लागो मोहि राम

(उच्छरकांड)

दैन्यभाव की अधिकता के कारण उनकी भक्ति श्रद्धामूलक है। वह श्रद्धात्मक है, दैन्यात्मक है, रागात्मक नहीं।

बल्लभाचार्य के मत में दैन्यभाव (अधीनता-प्रवृत्ति) का, जहाँ तक इष्टदेव का सम्बन्ध था, कोई स्थान नहीं था। उनकी भक्ति में मुख्य भाव या तो वात्सल्य था जिसके कारण स्नेहादि कमल गुणों की उत्पत्ति होती है, या उत्सुकता का भाव, जिसने उन्हें कृष्ण की रहस्य लीलाएँ गाने को बाधित किया। उनकी सुन्दरतम कविता में न पलायन-वृत्ति है, न अंतर्मुखी द्वन्द की प्रवृत्ति, न आत्मपूणा-भाव न अधीनता, न अस्तित्व स्थापन। उनकी भक्ति रागात्मक है। तीव्र राग केवल शृंगार की भाषा से ही प्रगट होगा। "मनुष्यों के सम्बन्धों में सबसे अधिक सम्बन्ध दाम्पत्य प्रेम का है। ईश्वर और मनुष्य का सम्बन्ध इससे भी ऊँचा और बढ़ा-चढ़ा होना चाहिये। यही शृंगारी उपासकों की उपासना का मूल आधार है। जो सम्बन्ध हमारे ज्ञान में सबसे उत्तम हो, ईश्वर का सम्बन्ध उससे भी अधिक उत्तम होना चाहिये। यूरोप में भी ईसाई सम्प्रदाय को मसीह की स्त्री माना है, और दाम्पत्य प्रेम को प्रेम का आदर्श कहा है। सुलेमान का गीत, जिसको श्रेष्ठ गीत कहा जाता है, शृंगार की भाषा से परिपूर्ण है।" ('नवरस' पृ० १३६-१३७)

साधारण शौर पर मधुर भक्ति के अर्थ हैं—भगवान में प्रियतम या प्रियतमा-भाव। कबीर और मीरा इसके श्रेष्ठतम उदाहरण हो सकते हैं। परन्तु कृष्ण-भक्तों की भक्ति में मधुर भक्ति इस रूप से नहीं आई है। गोपियों की भक्ति भक्त का आदर्श है। स्वयं गोपी बनकर प्रियतम के रूप कृष्ण को नहीं रिभजता। उनकी भक्ति मन का ही सकल्प है। भक्त अपने मन में गोरियों की ही मिलनाकाँछा और वियोग का अनुभव करना है। यह भक्ति वह कैसे प्रगट करे? क्या यह उस तरह का आत्माभिध्वक्ति-प्रधान आध्य लिखे, जैसा कबीर

के साहित्य में है। वह ऐसा नहीं करता। वह अपना आत्मचिंतन और आत्ममर्त्य गोपीकृष्ण के प्रेम-विग्रह में ही प्रगट करता है। गोपियों का मिलनसुख नन्ददास का ही संकलगात्मक मिलनसुख है, उनका विप्रलम्भ इनका ही संकलगात्मक वियोग है। इस प्रकार कवि की सदा उसके काव्य में ही प्रतिष्ठित है। नन्ददास के काव्य में मधुर भक्ति का यही रूप है। राधाकृष्ण और गोपियों का जो संयोग-वियोग शृंगार है, वह नन्ददास के लिए भक्ति ही है। उनकी तटस्थ भाव से इस लीला में भाग लेने और उसको आत्मा में अनुभव करने की भावना ही इसे भक्ति बना देती है। कबोर कहते हैं—

बालक आयो गेह रे

गोपियों का यह भाव इसी प्रकार यों है—

आज मेरे धाम आयें री नागर नन्दकिशोर
धन दिवस धन रात री सबनी धन माय सखी भोर
मंगल गावो चौक पुरावो बंदनवार बंधावो घोर
नन्ददास प्रभु लग रस बस कर आगत करहुँ भोर

दोनों में प्रकार का कोई अन्तर नहीं है। हाँ, गोपीकृष्ण या राधाकृष्ण का आशय ले लेने से संयोग-वियोग प्रसंग और भी विस्तृत, विश्व और नैकट्य पूर्ण रूप से प्रगट हो सका है। आज के महितक-प्रथा अतिनैतिक युग में स्थूल संयोग के ऐसे चित्र अथवा होंगे जैसे—

१—धुनातट नभ निकुंज द्रुम नभ दल पक्षीप पुष्प

तहाँ रची नागर वर रावटी उशीर की

कुमकुम धनसार घोर पकड़ दल बोर बोर

धरचत घहुँ और अकनी पंकज पाटीर की

द्योमित तन गौर स्वाम सुलद सरज कुंजधाम

परसत सीदल सुगन्ध मंदगति समीर की

नन्ददास विष प्यारी निरख सखी ललितता श्रोत

अवन पुनि सुन किकणी मँबोर की

२—कुसुम सेज पोड़े दम्पति करत हे रस बतियाँ

त्रिविध समीर सीयरी उसीर रावटी मध

खसवाने सीचे मुभग जुड़ावत हे पिय छतियाँ

कपोल सौ कपोल दिये भुज सौ भुज भीडे

फुच उतग पिय राजत हे भतियाँ

नन्ददास प्रभु कनक पर्यंक पर सब मुख बिलस

केलि करत मोहन एकगत मतियाँ

ही सकता है, इन संयोग-वियोग के प्रसंगों में नन्ददास ने जयदेव, भद्रकेशवर्त पुराण, विद्यापति और तूर की परम्परा को ही निभाया हो। परन्तु हम इतनी दूर जाने के लिए तैयार नहीं। नन्ददास के संयोग चित्र आध्यात्मिक नैवृत्य के ही प्रतीक हैं, और उनके वियोग वर्णन में आध्यात्मिक विरह ही प्रकाशित हुआ है।

नन्ददास के सारे शृङ्गार मच्छि-काव्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं:

(१) जिसमें राधाकृष्ण का केलिविलास है। नन्ददास ने इसमें विरह को स्थान नहीं दिया है। राधाकृष्ण तो निरय निकुञ्ज-विहारी हैं, फिर प्रकृति-पुरुष में वियोग किस तरह सम्भव है ? इस कथा में स्थूल शृंगार के दर्शन होते हैं। शृङ्गारशास्त्र का सहारा बहुत कम है—लीलाभाव की ही प्रधानता है। (लीलाव्रतु कैवल्यम्—वल्गुभा०)। यह काव्य पदों में ही है। कथा-काव्यों में गोपीकृष्ण का ही प्रेम-वियोग चित्रित है।

२—गोपीकृष्ण के प्रेम की कथा या इस प्रेम की धारणा (जिन रूपमजरी)। इस प्रसंग में शृङ्गार-शास्त्र का पगपग पर सहारा लिया गया, और उसके सहारे प्रेम-विकास की मंजिलें भी निर्धारित की गई हैं। तूर जैसी सम्मयता इस काव्य में नहीं है, पगपग पर सतर्कता के दर्शन होने। परन्तु राधाकृष्ण के निकुञ्ज-विहार, होली-आगादि

सरसागर में भी नहीं समा सका होगा। यही बात नन्ददास के सम्बन्ध में कही जा सकती है। जो ग्रन्थ में प्राप्त है, उनमें उनका कवि और विवेचक का रूप ही प्रधानता पा सका है। उसके बल पर उनकी भक्ति का मूल्यांकन नहीं कर सकते। हाँ, उसके द्वारा हमें उनके भक्ति-पूर्ण हृदय की भाँकी अवश्य मिलती है। हमें इतने से ही संतोष करना पड़ेगा। यह कहना भूल होगी कि काव्य में सतर्क रहने या गोपीप्रेम चित्रण में रसशास्त्र को आधार बनाने के कारण कवि भक्त की सजा का कोई अधिकारी नहीं रह गया। हमें यह समझ लेना है कि सारा भक्ति-साहित्य देवता के आगे की प्रसारी है जो आज देवालयों के बाहर आकर कौड़ियों के मोल बिक रही है। इस प्रसारी में सारा लोकमान, सारा शास्त्रज्ञान, सारा हृदयबोध देवता को समर्पण किया गया था। जो चीज़ संसार में सबसे सुन्दर है, उसे ही तो विष को अर्पण किया जाता है। अब कवि राधाकृष्ण या गोपीकृष्ण के गीत देवता को अर्पण कर रहा है तो वह उसके लिए अच्छी से अच्छी सामग्री का उपयोग क्यों न करे। इसीलिए कृष्ण-काव्य में रसशास्त्र के अप्ययन-अपशयन का आग्रह है।

इसमें नन्ददास को 'रसिक' कहा गया है। हम देख चुके हैं कि नन्ददास 'रसिक' भी थे, वे ज्ञानियों के पीछे किस प्रकार दीवाने हो गये थे। किस प्रकार रूपगंजरी (रसिक मित्र) से उनका स्नेह अन्त तक बढ़ रहा। वे यत्न भी थे—श्रीर अचछे भक्त। उनके साहित्य का कोई भी पाठक उनकी भक्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं बच सकता। त्रिन विशेषताओं का इस छन्द में उल्लेख हुआ है, वे हैं—

- (१) उनकी उक्तियों की सरसता (सरस उक्ति)
- (२) उनका तर्कवाद (बुक्ति)
- (३) उनके काव्य का भक्तितत्व ('भक्ति')
- (४) रसतत्व की उत्कृष्टता ('रस')
- (५) उनके काव्य का गीतिमाधुर्य ('गान उच्चारण')

भूषदास ने कहा है—

नन्ददास जो कछु कथो रागरम सौँ पमि
अच्छर सरस सनेहमय, सुनत खरन उठ जागि
रसिकदशा अद्भुत हुती, कर कवित्त सुटार
सत प्रेम की सुनत ही छुटत मोह अलधार
बाचगे सो रस में निरै, खोजत नेह की बात
आछे रस के बचन सुनि बेगि बिबस हो जात

इस छन्द में नन्ददास के काव्य की सुन्दर आलोचना है और उसके प्रभाव का मार्मिक वर्णन है।

इस छोटी-सी भूमिका के बाद हम नन्ददास के काव्य के विभिन्न अंगों पर भिन्न-भिन्न टीपणों के अतर्गत विचार करते हैं—

१—सम्बद्ध कथा कहने की शक्ति (कथा-सौष्ठव)

पुष्टिमार्गीय कृष्ण-कवियों में केवल नन्ददास ही ऐसे हैं जिन्होंने ऊटपटा पदों के अतिरिक्त सम्बद्ध कथा लिखने का प्रयास किया है। धरदास और रचनाओं में कथात्मक गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं, परन्तु

पदों की एकान्त मुक्तता के कारण उनमें कथा का सौन्दर्य पूर्णतः प्रगट नहीं हो सकता। सूरदास और अन्य पुष्टिमार्गीय कवियों ने लला-काव्य लिखे हैं जो ललकाव्य के अतर्गत आ सकते हैं। परन्तु इनका भी प्रकाशन अधिकतर पदों या गेय छन्दों में होने के कारण वे कथा-काव्य की दृष्टि से इतने महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितने नन्ददास के काव्य।

नन्ददास के कथात्मक ग्रंथ हैं—१ रासपंचाण्यायो, २ रूपमञ्जरी, ३ दशमस्कन्ध भाषा, ४ कविमनी मंगल, ५ श्यामसगई। उन्हें कथा लिखने का इतना व्यसन है कि उन्होंने विरहमंजरी जैसे मुख्यतः सिद्धान्त-ग्रंथ को उदाहरण-स्वरूप कथा कहकर पूरा किया है और मानमंजरी नाममाला जैसे पर्यायवाची शब्दों के कोष में मानवती राधा के मानमोचन की कथा भी विकसित की है। वस्तुतः मध्ययुग में कथा कहने-सुनने का अन्धा प्रचलन था। पुराणों की कथा वाँची-सुनी जाती थी। नन्ददास उनसे अत्यन्त निकट से परिचित थे। वे स्वयं कथावक्ता थे और वल्लभ सम्प्रदाय में भागवत जैसे पुराणों का सप्ताहपारायण तक होता था। सम्प्रदाय के गुरुओं ने भी कथाओं को अपने उपदेश का साधन बनाया था। 'वार्तापै' इन्हीं कथाओं का लिखित संग्रह है। अतः ऐसे युग में और कथा-वार्ता के देने कातावरण में रहकर यदि नन्ददास को सम्बद्ध कृष्णलीला (कथा) लिखने की प्रेरणा हुई हो, तो आश्चर्य की बात क्या है ?

नन्ददास की रचनाओं की विस्तृत आलोचना करते हुए हमने उनके कथा-काव्यों की वर्णवस्तु को उपरिष्ठ किया है और उसकी मौलिकता पर भी विस्तार-पूर्वक विचार किया है। इससे यह प्रगट होता है कि नन्ददास में सम्बद्ध कथा कहने की क्षमता थी। उनमें कथा के उपेक्षित सूत्रों को पकड़ने और विकसित करने की शक्ति थी, परन्तु उनका क्षेत्र परिमित था।

(१) वह पौराणिक कथाकार है, अतः कला का स्थान नीच है ।

(२) मूल कथाएँ पग-पग पर उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण करती हैं ।

(३) उनकी दार्शनिक एवम् आध्यात्मिक तत्त्वों को खोजना कला के मौलिक प्रभाव को बाधा पहुँचाती है ।

(४) उनकी कला वस्तु को नवीन रूप में उपस्थित करने की अपेक्षा, उसकी सभ्रावट में ही अधिक लगती दीखती है ।

केवल रूपमञ्जरी ही नया प्रय है जिसमें नृननात्मक दृष्टि से उनके हाथ परम्परागत कथा में बीजे नहीं हैं । यद्यपि यहाँ भी ध्येय निःसीम प्रेम की प्रतिष्ठा ही है जो चलनम सभ्रावट का प्रमुख स्थान है । इस कथा का टाँचा सूरी कवियों की आख्यायक कविता से मिलता-जुलता है ।

‘राममहार्णव’ और मूर के गादड़ी कृष्ण के कथा—पदों के पढ़ने में पाठकों को पता लगेगा कि नन्ददास को जग से कथागूथ की पकड़ उसी कला का सुन्दर विकसित रूप देने का कितना कौशल आता था ।

परन्तु सब ग्रंथों के अध्ययन में हम दृष्ट निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कथा के कहानीत्व पर नन्ददास की दृष्टि अधिक नहीं थी, यदि वे कलात्मक कहानी को ही अपना ध्येय बनाते, तो कदाचित् में गुलामी के समक्ष ही पड़ते । परन्तु उन्होंने अपने ग्रंथों में कर्णों आदि काथ्यात्मक घर्षणों पर ही अधिक बल दिया । ‘कविमनी मंगल’ और ‘सुशामावर्ति’ की कथाओं को मूल कथाओं से मिलाने पर वह

भाग नगण्य कर दिया। इनके यह अनुमान होता है कि उनमें कथाकार का चचेरा कथाकार का रूप प्रधान था। फिर भी कृष्ण परा के काव्य नमस्को के बीच में नन्ददास के कथा-काव्य बन्यम्ब साहित्य की दृष्टि में कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

२—चरित्र चित्रण

नन्ददास के काव्य चरित्र काव्य नहीं हैं, मायनाकाव्य या नैदानिक काव्य हैं, अतः यहाँ पाथों का अग्नि-विद्वान्तों को प्रकट करने के लिए या चरित्र की विशेष भावना को पूर्य करने के लिए ही हैं। चरित्र चरित्र-चित्रण की दृष्टि में उन्हें चरित्रों की भी दान नहीं उठती। फिर भी थोड़ा बहुत सा अध्ययन उनके पाथों का अचर्य हो सकता है।

उद्धव

भैरवगीत के एक मुख्य पात्र उद्धव हैं। उनका चरित्र बहुत कुछ भागवत के उद्धव के चरित्र जैसा है। उन्हें भी ज्ञान का गर्व है जो अन्त में स्थलित हो जाता है। यहाँ भी वे तार्किक पंडित हैं। सूरदास के उद्धव इनसे कुछ भिन्न हैं। उन्हें ज्ञान का गर्व तो उतना ही या कुछ अधिक है, परन्तु तर्कशास्त्र में वे पारंगत नहीं हैं। गोरियाँ उन्हें बुढ़ी तरह बना खालती हैं। नन्ददास के उद्धव कृष्ण पर मोघ भी प्रकट करते हैं कि उन्होंने मोघी जैसी सन्धी प्रेमिकाओं की उपेक्षा की है यह मोघ सात्विक भाव ही है, सामयिक नहीं, अतः भक्तिभाव की दृष्टि से यह उपादेय है। सख्यभाव के भक्त नन्ददास या सूरदास ही इस प्रकार के मोघ की कल्पना कर सकते थे।

गोपियाँ

भैरवगीत की गोपियों का एक सामूहिक चित्र ही हमारे सामने आता है। ये उसी प्रकार एक इकाई हैं जिस प्रकार सूरदास की गोपियाँ। सूरदास की गोपियाँ भावप्रवण हैं, नन्ददास की गोपियाँ मात्र

। यह तो है ही, वे भी बुगी तरह रोती-कलपती हैं, परन्तु साथ ही उनमें द्वेष की मात्रा कम नहीं है, और तर्क में पंडित उद्धवं पर भी जय पा जाती हैं। वास्तव में यह तर्क की प्रधानता नन्ददास के अपने द्वेष का प्रकाशन है। 'भैरवगीत' में नन्ददास ने गोपियों के विरह का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है, इसे उनका विरहिणी रूप ही हमारे अपने अधिक प्रमुखता से आया है। 'रासपंचाध्यायी' में हम उनके योगिनी रूप से भी परिचित हैं और उनके उल्लास—हास-विलास भी छाया रहते हैं। परन्तु गोपियों के संयोगिनी रूप की अपेक्षा उनका संयोगिनी-रूप ही अधिक मार्मिक है।

'विरहमंजरी' में एक 'ब्रजबाला' की कथा है। यह भी गोपी है। नन्ददास का अभीष्ट गोपीविरह का चित्रण है। अतएव इस गोपी की ही वैयक्तिकता प्रस्फुटित नहीं हो पाई है। यही हाल 'दशमस्कन्ध' की गोपियों का है।

वास्तव में गोपियों कृष्ण के प्रति प्रेम और विरह की एक 'प्रतीक' है, अतएव उनके चरित्र का विकास कहीं नहीं हो पाया है।

रूपमंजरी

'रूपमंजरी' एक सुन्दर, परन्तु देव-प्रताडित, नायिका के रूप में चित्रित होती है। परन्तु इन्दुमती इस अभागी बालिका का परिचय कृष्ण के सौन्दर्यमय-रूप से करा देती है, और वह कृष्ण से प्रेम करने लगती है। उसका प्रेम और विरह 'गोपियों' का ही प्रेम और विरह है। अतः यह चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'गोपी' ही है—सुन्दर, भाव-प्रवण संयोग में शतशः, उल्लास, विनोग में शतशः 'परकीया' प्रोक्षित-पतिषा।

इन्दुमती

इन्दुमती 'रूपमंजरी' की नायिका की सखी है। इतने नायिका के

का है जो एक मन 'सह' में अपने हृदय का प्रकृतिक रूप
 है। यहाँ 'सह' में ही 'सह' का है, वह वहाँ ही रहता
 है।

विचार

मन्दराज ने कहा है, मन्दराज की मन्दराज राधा का विचार का
 नहीं है - केवल मन्दराज में ही राधा जाती है। यहाँ राधा का
 विचार उसी प्रकार है जिस प्रकार मन्दराज के नाम में। मन्दराज में
 राधा मन्दराज में ही रहती है, वहाँ ही रहती है, वहाँ ही रहती है,
 वहाँ ही रहती है। मन्दराज की राधा में मन्दराज उल्लास मन हर लेती है, वह
 वह दुःख नहीं करती -

सह सविधान के मन्द में, देवन यही मन्दराज
 मरत परत होऊ भये, कुंवरि बिलोरी लान

मनहि कूलै भिरे

मन हरि लोनी ह्यम, परो राधे मुरझाई
 मुरझ के बचन से बनी राधा के शील का बड़ा कुन्दर बिरह
 हुआ है -

कुन्दर बचन तकाल, लड़ेती नैन उभारै
 निरलस हो बनस्पान, बदन तै बेल लंकारै
 सब धरने पर निरलि है, पुनि निरलि दिग मर
 लंवर धारपी बदन दे, मन होनी मुलकार

सकुच मन नै बही

राधा में राधा मुग्धा, अभिचारिका, सखिता बनेक करी
 ललाई पड़ती है, परन्तु मन्दराज की राधा में न वह सौख्यरिण
 वह सौख्यरिण की सदाव की राधा में।

रुक्मिणी

‘रुक्मिणी मंगल’ में रुक्मिणी का चित्रण हुआ है, परन्तु वह भी इसी तरह सुन्दरी विरहाकुल नायिका का जिस प्रकार अन्य गोपियों का। अन्य चरित्रों का विकास नहीं हो पाया—‘मंगल’ में उनका उल्लेख मात्र है, उनके कार्यकलापों आदि का उस प्रकार विशेष विस्तार नहीं जिस प्रकार भागवत में।

कृष्ण

‘रथमसगाई’ में कृष्ण चतुर युवा चित्रित किये गये हैं, जो अपने प्रतिद्वन्द्वियों को खूब छद्माना जानते हैं, जिन्हें अपनी सम्मोहन शक्ति पर विश्वास है। ‘शतपंचाध्यायी’ में वह स्त्रीद्वारात मधुरमूर्च्छ भगवान हैं। ‘भैरवीत’ में उनके प्रेमी और सम्वेदनाशील रूप का चित्रण दो एक पंक्तियों में हुआ है। ‘रुक्मिणी मंगल’ और ‘सुदामाचरित’ में कवि ने उनके शील को विकसित करने का विशेष प्रयत्न किया है। अन्य स्थलों पर, जैसे मानलीला में, वे दक्षिण नायक मात्र हैं।

सच तो यह है कि नन्ददास के काव्य में चरित्र-चित्रण को विशेष स्थान नहीं मिला है—हाँ, वे प्रेमविरह के कवि हैं, उनके नायक-नायिकाएँ प्रेम और विरह के मूर्च्छ रूप मात्र हैं, उनका वैयक्तिक चरित्र हमारे सामने नहीं आता।

३.—वर्णन

वर्णन कथात्मक काव्यों के सबसे महत्वपूर्ण अंग होते हैं। नन्ददास के काव्य में अनेक वर्णन आते हैं। वे वर्णन लिखने में बहुत पट्ट हैं—थोड़े में ही बहुत लिख देते हैं। इन वर्णनों के लिखने में उन्हें थोड़ी बहुत सहायता उन ग्रन्थों से चाहे भले ही मिली हो, जिन ग्रन्थों के आधार पर वे अपनी रचना कर रहे थे, परन्तु उनके अधिकांश वर्णन मौलिक हैं।

नन्ददास ने नगर का वर्णन कई बार किया है। एक पुर का वर्णन रूपमंजरी में आता है जहाँ धर्मवीर राजा राज करता था—

नये घोरहर सुन्दर, सुवान, अनु घर पै दूधर कैलास
ऊँची अटा घटा बतराही, तिन पर फेकी केलि कराहीं
नाबत सुमग सिलहंड हुलत यौ, गिरधर पिय को मुकुट लटकवौ

गुड़ी उड़ी छबि देत अति, अस बहु बनि रझौ वान
देखन आवत देव अनु, चढ़ि चढ़ि विमल विमान

आठपाठ अमराइ बरारो, जई लगि फूलत ती कुलवारी
सुभदि फूल मालन छबि मरी, श्रवतो उतरि परी अनु परी
बोलाई मुक, सारिक, पिक, तोता, हरियर, चातक, पों, करोती
मीठी धुनि सुनि अस मन आवे, मैव मनौ चटमार पढ़ावै
फलन के भार नमित द्रुमन ऐसै, संगति पाइ बड़े जन जैतै
का कहिये आभार निवारै, मारस हंस बंस छुरि छारै
निरमल अल अनु सुनि-मन आइ, परसत लान घन-पातक आइ
फूल फूलि रहे बलब सुदेसे, इरीवर, रात्रीव, बुसेसे
पानी पर पराग परी ऐको, धीर फुटक मरी आरति त्रैने
पदमन को अब पौन हुलावै, तक संपद अलि पैठि न पावै
अनु तनकारति मानिनि तिया, आन सुगति रत आग्यो पिया

कंच-कंज प्रति पुंज अलि, सुंजत हमि परभात
अनु रवि-हरतम छबि मगरी, रोषन ताके तात

वर्णन में वहि ने उपमा-उपमेधा की आकृष्टी लया दिग्गजाई है और
सबाने में आग्य-कवियों की रचना से भी लहायना की है जैसे—

। भारत नमि विद्व लव रई भूमि निआइ
रवराती वरुण बिमि नईदि सुमर्ग पाइ

फलन के भार नमित द्रुमन ऐसैं, संवति पाइ बड़े जन जैतैं

(नन्ददास)

परन्तु वर्णन-शैली में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग उसके सौन्दर्य को बढ़ा देता है। मगर के दूसरे वर्णन 'सुदामाचरित', 'कृष्मिनी मंगल' और दरमरन्ध्र में मिलेंगे। पहले दो ग्रंथों में द्वारका का वर्णन है। परन्तु कवि एक ही क्षमप्रो को अनेक प्रकार से उपस्थित कर रहा है—

उड़ी नभ गुड़ो बनी छबि (७५)

तैरैई देव विमाननि चढ़ि, द्वाणवति कायें (७७)

(मंगल)

गुड़ो उड़ी छबि देत अति, अरु बहु बनि रहौ बान
देखन आवत देव अनु, चढ़िचढ़ि विमल विमान

(रूपमंजरी)

कृञ्ज कुञ्ज प्रति, पुंज, भँवर, गुञ्जत अनुहारे
मनौ रवि-डर तम भजै, तजै, रोवत है नारे

(मंगल)

कञ्ज कञ्ज प्रति पुंज अलि, गुञ्जत इमि परमात
अनु रविडर तम तवि भज्यौ, रोवत ताके तात

(रूपमंजरी)

नन्ददास के अन्य वर्णनों की भाँति यहाँ भी वे भाषाशैली के द्वारा विशेषता देना करने से नहीं चूकते। उनके दो अरख हैं—वर्णों का माधुर्य और अनुपास—जैसे

उच्चल मनिमय घटा, अटा छौ वातें करई
अगमग अगमग जोति होति, रविमसि लौ अरई
चपल पताका करके, अरके अरक किरन बई
धाम नु कवई, दरसैं, निर ५१

एक पुर का वर्णन
 काव्य में आया है वहाँ यद्यपि राजा राज करता था—

नग भीरहर मुलद, गुणम अनु परी दूसर केनाम
 ऊनी अटा पटा अनादी तिन पर केकी बेलि कराही
 नाचत मुमग गिराह इलन गी, गिराहा पिर को मुकूट लटकव्यौ

गुड़ी उड़ी अरि देत आत, अम कतु अनि रयी वान

देखन आत दव अनु, चट्टि नाद विमल विमान

आमवास अमगाह बगना, जई लगि कुलत गी कुलवारी
 चुभहि कुल मालन छवि भगी, अचना उतार परी अनु परी
 बालाह मुक, शारिक, विक, ताता, हाग्यर, चातक, गा, कपोती
 मीठी धुनि मुनि अम मन आवै, मेन मनौ चटमार पढ़ावै
 फलन के भार नमित द्रुमन ऐसे, संवति पाह बड़े वन जैसे
 का कहियै कासार निकारै, शारम इस वंस छवि छाई
 निरमल जल अनु मुनि-मन आही, परसन खन जन-पातक बाही
 फूल फूलि रहे जलज सुदेसे, इदीवर, राजाव, कुसेसे
 पानी पर पराग परी ऐसी, बीर फुटक भरी आरसि जैसी
 पदमन कौ जब पौन डुलावै, तब लपट अलि बैठि न पावै
 अनु तनकारति मानिनि तिया, आन जुवति रत जा-वी पिया

कंच-कंच प्रति पुंज अलि, गुजत इमि परभात

अनु रवि-हर तम तजि भग्यौ, रोवत ताके तात

इस वर्णन में कवि ने उपमा-उत्प्रेक्षा की अच्छी लड़ा दिखलाई है और
 वपर्य वस्तु को समझने में अन्य कवियों की रचना से भी सहायता ली है जैसे—

फल भारते नमि विटप सब रहे भूमि निछराह

पर उपशारी पुरुष विनि जकटि ससपति पाह

इसी से उसका वर्णन साधारण अनुभव के स्तर से उठकर काल्पनिक, वीराणिक अनुभूतिमय हो गया है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में भले ही 'वनस्थला' और 'राजस्थला' के ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण वर्णन मिलें जैसे—

तन्तर कोमल कनक भूमि, मनिमय मोदति मन
 देखियत सब प्रतिदिव, मनौ घर में दुसरी बन
 थलज-जलज भलमलत, ललित बहु भेंवर उडावे
 उड़ि उड़ि परत पराग, बहु छवि कइत न आवे
 भी जमुना अति प्रेम भरी, तट बहत जु गहरी
 मनि-मंडित महि मोंहि, दौरि अनु परसत लहरी

परन्तु 'भागवत' में वृन्दावन 'वन' है और कृष्णभक्त काव्यों ने उसका अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया है। नन्ददास ने उसे 'कनक भूमि' 'मणि-मंडित महि' बना दिया है। इस प्रकार धार्मिक भावना और कल्पना उनकी 'काव्य-प्रतिभा' को स्वतंत्र दौड़ नहीं दौड़ने देती। इसी प्रकार 'रूपमंत्रि' में यह एक अलौकिक वन का वर्णन कर रहा है जो नायिका ने स्वप्न में देला है—

एक ठाँउ एक वन है जानौ, ताकी छवि हो कइ बखानी
 आन्हि रंग पुहुप में देखे, अपनी बारी नहि तस पेले
 औरहि भाँति भेंवर ख राजें, ठौर ठौर बहु जव से बाजें
 रुखन देखि भूल मजि जाई, यह उखलान सोच है माई
 रटहि बिहंगम इमि मन हरै, अनु प्रुम अप में बातें करै
 गहवर कुंजपुंज अति सौंदे, मनिमय मंडप छवितहैं को है
 पुहुप बितान बान अछ बाने, चंद बलौडे के अनु ताने

(२०६-२१५)

इस वर्णन को जायसी के इस वर्णन के सामने रखिये—

वन अमराठ लाग चहुँ पावा । उठा भूमि हूँत लागि कवा ।

। तरिवर सबे मलय गिरि लाई । भइ जग छुँद, रैनि रोइ आई

इसी से उसका वर्णन साधारण अनुभव के स्तर से उठकर काल्पनिक, पौराणिक अनुभूतिमय हो गया है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में भले ही 'वनस्थला' और 'रासस्थला' के ऐसे ऐश्वर्ययूग्ण वर्णन मिलें जैसे—

ता-तर कोमल कनक भूमि, मनिमय मोहति मन
 देलियत सब प्रतिनिब, मनौ धर मैं दुसरो बन
 थलज-जलज फलमलत, ललित बहु भँवर उड़ावे
 उड़ि उड़ि परत पराम, बल्लु छवि कहत न आवै
 श्री जगुना अति प्रेम भरी, लट बहुत जु गहरी
 मनि-मंडित महि माँहि, दौरि जनु परत लहरी

परन्तु 'भागवत' में वृन्दावन 'वन' है और कृष्णभक्त काव्यों ने उसका अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया है। नन्ददास ने उसे 'कनक भूमि' 'मणि-मंडित महि' बना दिया है। इस प्रकार धार्मिक भावना और कल्पना उनकी काव्य-प्रतिभा को स्वतंत्र दौड़ नहीं दौड़ने देती। इसी प्रकार 'रूपमंजरी' में वह एक अलौकिक वन का वर्णन कर रहा है जो नायिका ने स्वप्न में देखा है—

एक ठाँठ एक बन है खानौ, ताकी छवि ही कहा बलानौ
 आनहि रंग पुहुप में देखे, अपनी बारी नहि तब पेखे
 औरहि भाँति भँवर रब राजे, ठौर ठौर बल्लु जप से बाँजे
 रुखन देखि भूत भवि जाई, यह उगलान सॉच है माँई
 रउहि विहंगम इमि मन हरे, जनु द्रुम अप मैं बातै करे
 गहवर कु'प्रपुंज अति सीहै, मनिमय मंडप छवितहै को है
 पुहुप बिलान धान अल बाने, बँद बल्लौडे के जनु ताने

(२०६-२१५)

इस वर्णन को जायसी के इस वर्णन के सामने रलिये—

वन अमराठ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हूँत लागि अफा ।
 तरिवर सरे मलय गिरि लाई । भर जग छुँई, रैनि गेह छाई

• और टैंग की आगि पिय, पानी पाइ सुभाद
पानी में की आगि बलि, काँदे लगी तिराद

यहाँ कवि ने भौरी के नये पंख उमने और नायक से नये पंखों को मुकुट में स्थान देने की बात कहकर सजीवता ला दी है और प्रसंग को निर्व्यक्तिक 'बारहमासा' का अंश होने से चन्ना लिया है। इस 'बारहमासे' में सब से सुन्दर चित्रण 'सावन' का हुआ है—

अब देखियत उमगी धन-माला, मानहुँ मत्त मदन की टाला
छुटे जु बन्धन तोरी-मरोरि, धनुष बने मनु पचरंग डोरि
बगन की पंक्ति बड़े-बड़े दंत, धुरया मद के पटे बहंत
गरबनि, मुंजनि, मुनि-मुनि महा, दरकत हिय, दुख कहिये कहा
मणि-भरि सुद-भडारनि पानी, मागत मोहिं, करत नकवानी
धूमत फिरत महा मतवारे, दाहत पिय के अचधि-कगरे

यहाँ कवि ने 'बादलों' से हाथी का रूपक खड़ा किया है। मद मतवाले हाथी अन्त की पंक्ति में अंच—

दाहत पिय के अचधि-कगरे

कहे जाते हैं, तब प्रवृत्ति-चित्रण के साथ-साथ विरहिणी की मन-व्यथा का भी आव ही चित्रण हो जाता है। ऐसे स्थल कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और समसामयिक काव्य में विरल हैं।

'रूपमचरी' में परशुत-वर्णन आता है जो बारहमासा की भाँति ही वियोग-काव्य है, सयोग-काव्य नहीं। परन्तु उसमें कवि ने विशेष वर्णन केवल 'वर्षों' का ही किया है, शेष श्रुतियों का केवल विरहिणी पर प्रभाव मात्र दिशा कर ही उसे संतोष हो गया है। क्लास्तव में यहाँ वर्णन के साथ साथ ही कवि नायिका की 'उन्माद' दशा का भी चित्रण कर रहा है—

उमगे बादर बारे बारे, बहरे बहुरि भयानक भारे
गुमदनि, मिलनि देखि डर आवै, मनमय मानो हाथी करारै

और टौर की आगि विष, पानी पाह सुभाह
पानी में जो आगि बलि, काहे लभी सिगाह

यहाँ कवि ने भीरों के नये पंख उगाने और नायक से नये पंखों को मुकुट में स्थान देने की बात कहकर सजीवता ला दी है और प्रसंग को निर्वैयक्तिक 'बारहमासा' का अर्थ होने से बचा लिया है। इस 'बारहमासे' में सब से सुन्दर चित्रण 'सावन' का हुआ है—

अब देखियत उमगी घन-माला, मानहुँ मत्त मदन की टाला
छुटे छु छन्धन सोरी-मरोरि, धनुष बने मनु पचरंग होरि
बगन की पीकि बड़े-बड़े दंत, धुरवा मद के पटे बहंत
गरबनि, मुंजनि, मुनि-मुनि महा, दरकत द्विय, दुम्य रुदिये कहा
भगि-भरि सुंद-भरारनि पानी, मागत मोहि, करत नकथानी
धूमन करत महा मतवारे, टाहत विष के अवधि-करारे

यहाँ कवि ने 'बादलों' से हाथी का रूपक रखा किया है। यह मतवाले हाथी अन्त की पीकि में बंध—

टाहत विष के अवधि करारे

कहे जाते हैं, तब प्रवृत्ति-चित्रण के साथ-साथ विरहिणी को मन बचना का भी काव्य हो चित्रण हो जाता है। ऐसे स्थान कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और समसामयिक काव्य में विरल हैं।

'रूपमञ्जरी' में परशुहनु-वर्णन आता है जो बारहमासा की अग्नि ही विशेष-काव्य है, उद्योग-काव्य नहीं। परन्तु उनमें कवि ने विरह वर्णन के बल 'मर्वा' का ही विशा है, शेष शत्रुघोष का केवल विरहिणी पर प्रभाव काव्य रिल्या कर ही उसे संतोष हो गया है। कल्प में यहाँ वर्णन के साथ साथ ही कवि नायिका को 'उम्माद' रखा का भी चित्रण कर रहा है—

उमगे बारर कारे कारे, बहरे बहुरि भयानक धारे
मुमदनि, मिलन देखि दर कारे, मनमथ आये हाथी लाराये

पवन महावन लै लै भावै, अंकुम-छटन छोर-उपजावै
 भामिनी भागि भवन दुरि जाही, गिरि पर है कोउ कुंवर माई
 पन में तनक जु विय उनहारी, तिहि लालच देखी बर नारी
 बगन की माला, नैन विमाला, मानत विय उर पंकज माला
 दामिनि दमक देखि दग नावै, विय पट पीत छोर सुधि आवै

इस प्रकार का प्रकृति-वर्णन हिन्दी काव्य के लिए नई चीज नहीं है परन्तु अधिकांश हिन्दी प्रकृति-काव्य उद्दीपन के रूप में है। यहाँ वर्णन उद्दीपन के लिए नहीं है, रसपुष्टि के लिए ही यहाँ प्रकृति वर्णन का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के वर्णन हिन्दी काव्य में बाल हो हैं। इन प्रकृति-काव्यों में कहीं-कहीं कवि ने भागवत के 'शरद-वर्णन' (दशमस्कन्ध, अध्याय २०) का सहारा लिया है, जैसे 'बो मार्ग कभी छाक नहीं छिये जाते वे, वे पास से टक गये और उनको पहचानना कठिन हो गया—जैसे जब 'दुःखति वेदों का अभ्यास नहीं करते, तब कालक्रम से वे उगड़े भूल जाते हैं। (भागवत)

बाट पाट नून छादित ऐसैं, अभ्यास बिन बलि बिद्या जैसे
 (राममंजरी, १५५)

'दशमस्कन्ध' अध्याय २० में भी वर्णन-शरद-वर्णन है, परन्तु यहाँ कवि भागवत का अनुवाद ही कर रहा है। इसमें कवि के हाथ स्वतन्त्र नहीं है।

नन्ददास ने वीथिका के लिए प्रकृति-वर्णन का प्रयोग किया है, यद्यपि साथ ही गौण उद्दीपन उद्दीपन भी है, जैसे—

कोनल दिन अकन मानो बन ब्याव रही गी
 मनभ्रम लेजो वागि गुमइ गुमइ पुरि रओ गुनाल बरो
 बरकि दूरा सी दिन कुष्ठ रग्धन जब अर्ध
 मनई दिन विगत सुरम लनाय लनाई

मन्द मन्द चल चाख चन्द्रमा अति छवि पार्द
 भलकत है जनों रमरमण पिय कौतुक आई
 इसके अतिरिक्त अलङ्कारों में भी प्रकृति का प्रयोग हुआ है जैसे—

टूटी मुक्तनमाल छूटि रही भँवरे ऊपर
 गिरति जिनि सुरसरी गिरि द्वै घारा घारीधर

इस प्रकार के प्रयोग लगभग प्रत्येक साहित्य में होते हैं, नन्ददास के काव्य से भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु नन्ददास की विशेषता तो रसपूर्ण प्रकृति-चित्र उपस्थित करने में है जहाँ उन्होंने भाषा, भाव, और रस को प्रकृति के साथ गूँथ दिया है। 'रासपंचाध्यायी' से हम एक उदाहरण देकर इस प्रयोग को समाप्त करते हैं—

कुसुम-धूरि धूँधरी कुञ्ज, मधुकरिनि पुञ्ज कहँ
 ऐमेहु रस आवेन लटकि कीनी प्रवेश तहँ
 नव पल्लव की पैनी अति सुखदीनी खासै
 सुन्दर मुमन सोठ निरखत अति आनंद हिय बरसै

अब तो यह है कि नन्ददास के काव्य में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलने हैं। उनके प्राकृत काव्य को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—

(१) परम्परागत जैसे बारहमासा, षट्शृङ्ख, भागवत के दण्ड का नैतिक चित्रण या उद्दीपन के लिए प्रकृति का प्रयोग, अथवा अलंकार के लिए प्रकृति से उदाहरण लेना

(२) रोमांटिक (—प्राकृत स्वच्छंदतावाद)

सारे कृष्णकाव्य को ही एक तरह हम रोमांस काव्य
 हैं, विशेषतः यदि हम उसका दार्शनिक और साम्प्रदायिक अर्थ हटा
 दें। इसी प्रकार का रोमांटिक प्रकृति-चित्रण हमें आदमी और अन्य

सूफी कवियों के काव्य में भी मिलता है। अन्यत्र इसमें इसके उदाहरण दिये हैं।

रूप-वर्णन के तो कितने ही चित्र हमें मिलते हैं। नन्ददास का अधिकांश काव्य नायक-नायिकाओं की प्रेम-विरह की कथा लेकर चलता है। इसलिए उभय-यक्ष का शारीरिक सौंदर्य अवश्य सामने लाना होता है। नन्ददास ने रूप-चित्रण की उस परंपरा पर ही खड़ा ही किया है जो 'नखशिख्य' के नाम से प्रसिद्ध है। 'रूपमञ्जरी' में नायिका के सौन्दर्य का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है—

सीस पुहुप गूँघनि छवि ताही, मनौ सदन-मृग खानन आही
बेनी बनी कि सपिनि आही, बुरी दीठि देखै तिहिं साही
सोहत बँदि बराह की ऐला, भाल भाग-मनि प्रगटी जैसी
भ्रुव-धनु देखि मदन बद्धितथी, हर के समर समै किन मथी
अब याके बल करौ सराई, हरौ द्विनक में हर हरतारै
बालपने पग चचलतारै, अब बलि छविले नैननि आरै

×

×

×

नायिक नय अनु मनमथ पासो, हँसो हरि देव की माया सी
मृदु कपोल छवि बरनि न आही, भलके अलक सुमी जिन मारी
अधर मधुर मधि रेल सु टारी, अरुन पाट अनु पुई पवारी
लछत जु हँसत दसन की खोनी, को है टाड़िम को है मोती
चिबुक रूप छवि उभरै जेरै, जगत-रूप पुनि परै न मोरै
कंठ-लोक छवि पीठ की धारा, पीठ परी सब छवि संभारा

×

×

×

सुन्दर कर राजन रँग मीने, एक कमल के अनु निवि कीने
मंगल है तु उठे कुच दोऊ, धारि न उपमा आनि तर कोउ
कीरल, कुम्भ, मधु सम माने, सरल बचिन लेउ नहिं परमाने
सब करी सुन की राति निविचरी, रवनी उर-धरनी पर बरी

रोमराजि अम देहि दिवार्हे, अनु उत ते रैना की भर्तई
 किशौ नीलमनिकिङ्किनि माही, रोमावलि निहि जोगि की छ्वाँदी
 किशौ लटी कटि टिवि करतारा, रोमधार अनु चरदी अभागा
 गञ्जन कटि किङ्किनी रमाला, मदन मदन अनु बंदनमाला
 पादन मनिमय नूपुर धुनी, कंब-विबर मनौ मनमथ मुनी
 चरन धरत अई तई तदनि, अदन होत मो लीह
 अनु धरती धरती विरे, तई तई अरनी बीह

प्राण (भावक) के रूप का विषय भी कुछ इसी प्रकार हुआ है
 वेन—

गुग्गुलु विष की बदनि निरलि, अल को नहि भूलौ
 कर लोचन मॉझ, मरल अम्बुष अनु पुलौ
 कुटिल अलक मुल कमल, मनौ मधुकर मगधारे
 तिन-मवि मिलि रहे लाल, नैन खलल तु हमारे
 चित्तवनि मंहन मथ, भीह अनु मनमथ-पर्वी
 निरट ठगौठी आदि, मंद-गुदु, मारक हॉनी
 (राजवंशाव्यादी)

राम बरन लन अल रल भीनी, मरकन रल निबोह अम कीनी
 मोरषर लिर अर कहु लीनी, मानी अली टटावक टोनी
 मोहन अर कहु बाँकी भौरी, मा मन जाने, के पुनि होती
 पुनि-पुनि सरर कमल रल लीने, तिन को मोती कानि होवे
 ना मंहन के नैनन जाने, अलि ! नेऊ अलि टोके जाने
 मानिक मोरी अममय जोरी, कहन तु मो धनि होती अली
 पौन कनर दुनि पात न कती, दानिनी ली कहु विर है रही
 (कदम्बो ११३-११९)

कवय लक्ष्मण के कवयिका का कहा अंतर है। 'निवृत्त और' लिर को पर बने है, इन्हे मगधर की विद्वान्मन कनर और विर

भिन्न अवस्थाओं की भाँकी मिलती है। एक ही छवि पर सैकड़ों पद हैं। जागरण (मगना), शाल (बनचारण), रात्रमोग, शयन, आरती—प्रत्येक अवसर पर कन्हैया की शोभा का वर्णन लक्ष्य होता है। इसीलिए नन्ददास के पदाश्ली-काव्य में कृष्ण के बीवियों सुन्दर चित्र मिलेंगे जैसे—

गाइ त्विलासन सोभा भारी

गोरत्र रचित बदन-कमल पर, अलक भलक घुँगरी
नखखिल अंग सुमग बहु भूषण, पहिरत सदा दिवारी
मेलि रही है स्वरिक सभा पर, नग रंगन उबियारी
अमकन राजे भाल-गड-मुब, या छवि पर बलिहारी

इसी तरह राधे के भी अनेक चित्र हैं जैसे—

ठाढ़ी है मंजन किये आँगन अर्पने
देखि न मुनि न एसी संपति सरने
बड़े-बड़े बार पाछे छूटे अति ह्वाजे
मानहुँ मकरध्वज चमर विराजे
बदन खलिल कण बगमग बोती
मानो इन्दुमुखा तामें अमीमय मोती
आधो मोतीहार चारु उर रह्यो लखी
कनक लता तें मानो उदय होत सखी
पुन सुरसरी सम मोतिन के हारा
रोमाबाल मिली मानो यमुना की घारा
पीक भलकन सौहें सरस्वती ऐनी
परम पावन देखी मदन प्रवेनी
अंचल उड़न छवि कहिये कवन
रूप दीपखिला मानो परखी पवन

विशाल रूप-वर्णन अलंकारों के सहारे हुआ है। यही अलंकारों का उत्तम मूर्तमत्ता उसका बल है। कृष्ण काव्य के आदि गुरु शक्ति और जयदेव के काव्य में ही ऐसे रूप का प्रचुर वर्णन है। इन्होंने इनकी परम्परा ही बन गई। नन्ददास ने इसी परम्परा को जो बढ़ाया। उनकी सम्प्रदाय-निष्ठा ने इसे रूपासक्ति और रूप-वर्णन शैक्षणिक प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया।

कृष्ण-कवियों के वर्णनचतुर्थ की परीक्षा की भूमि रासलीला। यही पर देखा जाता है कि कौन कवि कितना महान् है। यद्यपि रासलीला की आधार-वस्तु से बहुत कुछ सहारा लिया जा सकता है, मनुष्य कवि उस समय तक सर्वत्र चित्र उपस्थित नहीं कर सकता जब तक उसमें वर्णन करने की महान् क्षमता न हो। 'रासलीला' का वर्णन 'श्रीमद् श्रीमद्' नाम से विष्णु पुराण में है। भागवत में रास का श्रेष्ठ वर्णन है और उसका आधार लेकर जयदेव के गीतगोविन्दम् में शक्ति की एक अद्भुत सामग्री उपस्थित करने की चेष्टा की गई है। रास और नन्ददास दोनों ने इन पूर्ववर्ती कवियों की सामग्री से रासलीला ली है, परन्तु नन्ददास भी अपने रासलीला पदों में नन्ददास की 'रासव्याख्या' के पाँचवें अध्याय की सामग्री से होकर ही ले सके हैं। इसमें कवि ने अपने अध्ययन, अपने भाषा-ज्ञान और अपनी काव्य-प्रतिभा का पूरा-पूरा प्रयोग किया है और वह पराच्चा प्रथम भेणी में उतरा है।

४—रस

नन्ददास मूलतः भक्त हैं, परन्तु उन्हें पग पग पर कविता का भी आनन्द है। इसीलिए उन्होंने भक्तिभाव की रसदृष्टि से व्यख्या भी की है। कृष्णभक्त कवियों में से यही एक ऐसे हैं जिन्होंने गोपी-वृन्द के रसतत्त्व से अस्वात्म ज्ञान की उपलब्धि सम्भव बताई है और गोपी-वृन्द का ज्ञान ही ज्ञान का सार बताया है। भक्तिभाव ही ज्ञान का सार है।

श्रीर विरहमंत्रो एवं रूपमंत्रो काव्यो मे यह शास्त्र अविच्छिन्न रूप में हमें उपलब्ध है, परन्तु उसमें जो कमी है उसे कवि एवं 'स्रष्टा' की अन्य रचनाओं के अध्वपन से पूरा किया जा सकता है। जैसा इन आगे सिद्ध कर देंगे, नन्ददास के अधिकांश काव्यों का विषय प्रेम है— इसी को मधुरभाव की भक्ति भी कह सकते हैं। जो रसशास्त्र में भृङ्गार है, वही भक्तिशास्त्र में मधुरभाव है। इस प्रकार स्थानित होने के बाद रसिक कवि इसमर्मज्ञ नन्ददास के लिए ब्याख्या में कोई अड़चन नहीं पड़ सकती थी। नन्ददास ने अनेक पदों में प्रेम के लोकोत्तर और दैवीरूप की ही विवेचना की है—

प्रेम प्रेम सो होय प्रेम सो पारहि जैये
 प्रेम बैयो संसार प्रेम परमारथ पैये
 एकै निरचय प्रेम को जीवनमुक्त रसाल
 साँचो निरचय प्रेम को त्रिदि ते मिनै गोपाल

(भैरवीगीत)

वे शब्द ही प्रेम को विषयवाचना (कार्य-भाग) से छलगा कर देने का प्रयत्न करते हैं—

ऊँच कर्म से स्वर्ग है, नीच कर्म से भोग
 प्रेम बिना सब पाँच मरै, विषय वाचना रोग

(ऊँच कर्म से स्वर्ग मिलना है, नीच कर्म से भोग, परन्तु प्रेम बिना सब सो। विषयवाचना के रोग में पच-रस के मारने हैं) पर भागवत की लौकिक प्रेमरस से अभिन्न बनाकर मानिवाच्य को प्रेम रस ही और भ.पु.को से पड़नी चार नन्ददास ही सर्वोच्च मरिचक हैं, जो बाल्य भागवत ने भागवत में ही इस प्रकार की बोधार्थ दी थी—

काव्य और कला

निगम कल्पतरुर्मलितं प्रुवं
शुकमुख्यादमृतद्रव संयुतम् ।

पिबत भागवतं रस मालयं
मुहुर्हो रसिका मुवि भावुकः ॥

वृक्षमालाचार्य ने भी कृष्ण को 'परमरस' 'रसो वै सः' कहा ।
प्रिय शिष्य सूरदास ने भगवान् की लीलाओं में शृङ्गार भाव की
ना इतनी तन्मयता से की, कि यही भक्तिरस हो गया । नन्ददास
की सैद्धान्तिक व्याख्या उपस्थित की और अपनी रचनाओं में
स्व का उसी प्रकार विस्तृत एवं निगूढ़ प्रयोग किया । "संसार
कुछ रस है, जो कुछ सौन्दर्य है, वह सब प्रभु का ही है" :

रूप प्रेम आनन्द रस, जो बहुत जगमै आदि
सो सब गिरिधर देव कौ, निधरक वरनौ ताहि

(रसमञ्जरी, १०)

। कहकर नन्ददास नायिका-भेद भी कह जाते हैं । यही नहीं, ये
ने काव्य में लीला, भाव, रति आदि शृङ्गारशास्त्र के मान्य विषयों
विस्तृत प्रयोग करते हैं (दे० रूपमञ्जरी) ।

नन्ददास ने विशेष रूप से गोपी-प्रेम के संयोग और वियोग पक्ष
ही धिक्कण किया है । अन्य रसों और भावों का उनके काव्य में
पः अभाव है । 'वात्सल्य रति', 'शोक', 'क्रोध', 'भय', 'आश्चर्य'
दि भावों का थोड़ा बहुत वर्णन कवि ने किया है किन्तु सब तो यह
कि ये वर्णन प्रायः किसी परिस्थिति के अनुसंधान से हैं । उनमें कवि
अंतरात्मा की पुकार की वह गूँज नहीं सुनाई पड़ती जिसे हम
पी-कृष्ण के प्रेम के वर्णनों में सहज ही सुन पाते हैं । 'दशमस्कंध'
। अफामुर, बकामुर, कालीनाग, गोवर्द्धनधारण्य आदि विभिन्न
रिणाओं में 'भय', 'क्रोध', 'आश्चर्य' आदि के त्रिन भावों का प्रदर्शन

में कवि की स्वल्प उद्भ्रानताओं की जो अपेक्षाकृत कमी दिलचस्पी पड़ती है उसी से यह जान पड़ता है कि कृष्ण कथा के साथ जुड़ी होने के अनुरोध से ही कवि इन लीलाओं के वर्णन की ओर अप्रसन्न होता है।" ('नन्ददास', पृ० ११०)

वास्तव में यह सच है, यदि 'दशमस्कन्ध' उपलब्ध न होता तो हम नन्ददास के अन्य रसों के प्रयोग से एकदम वंचित रहते।

संयोग शृङ्गार की अपेक्षा विप्रलम्ब का ही अधिक वर्णन एवं विस्तार हमें नन्ददास के काव्य में मिलता है। संयोग शृङ्गार की कुछ छाया रूपमंजरी और भँवरगीत में मिलती है, परन्तु वहाँ यह संयोग भावनात्मक एवं मानसिक संयोग है—

देखे मोहन गिरिधर पिपा, साँवरे जगत-सदन के दिशा
पिपदि निरखि तिय लज्जित भई, सखि पाछे आछे दुरि गई
हँसत हँसत पिय तिहि टिंगि आये, काम तेँ कोटिक ठाम वृथाये
सखि सौ यह लखटनि अलबेली, अरुभी हेम प्रेम बनु बेली
ताही के रस ताहि मनावै, मोहनलाल महा छवि पावै
बनिता-लता सइब सुखदाई, ऐसे सरस निरस हँ आई

नेह नकोड़ा नारि कौ, बार बार कन्यार
पलराये वे पारयै, निरपीड़े निरसाइ

बोलि बोलि मादक मनु बानी, कुँवरि निहोरि कुछ मैं आनी
का कदिये तिहि कुछ निचाई, जनु मुख पुञ्ज ही करि छाई
तामि सेव मु वेवत ऐसी, आल-बाल रति बेली जेगी
बहु छल, बहु बल, बहु मनुहारी, ली बैठे तहाँ कुञ्जिहारी
मन चहै रण्यो, दतनु चहै भण्यो, कामिनि कौ यह कौतुक लग्यो
खो पारद कौ कर गिर करै, सो नशेद बाला उर धरै

पुष्पन ही के दीपक जहाँ, जगमगी जोति लागि रही तहाँ
 प्रथम समागम लज्जित तिया, अंचल पवन सिरावत दिया
 दीप न बुझै विहँसि बर बाला, लपटि गई निय उरसि रसाला
 मोहन भूल मिलत ही लहै, ऐ परि इन सरि परत न कहै
 प्रेम पुलक अंकुर तिहि काला, सो अन्तर सहि सकति न बाला
 चित विवधान सहति नहिँ सोई, रूपमञ्जरी अरु रस सोई

सुग्धन समय गु नासिका, बेसरि मुती हुलाह

अधर छुड़ावन कौ मनौ, पिय की हाहा खाह

(रूपमञ्जरी, ५३४—५३५)

मने इस विस्तृत अवतरण को इसलिए उद्धृत किया है जिससे यह
 सिद्ध हो सके कि संयोग काव्य पर रसशास्त्र का क्या प्रभाव है ! यह
 मिलन भौतिक जगत में नहीं होता है, स्वप्न में होता, यहाँ स्पष्ट ही
 माध्यात्मिकता की छाप है। परन्तु मिलन-प्रसंग में 'रीति' का आग्रह
 विशेष है। कवि ने रूपमती को नवोद्गा नासिका चित्रित किया है
 (दे० सुग्ध नवोद्गा—रस० ४०)। प्रथम समागम के सम्बन्ध में
 नासिका की लाज और लाजमोचन का चित्रण भी रीतिशास्त्र के
 अनुकूल है। यदि कृष्ण अलौकिक नायक न होते, और मिलन स्वप्न
 में होने पर उस पर अध्यात्म की छाप नहीं होती, तो हम स्पष्टतया
 इस काव्य को शृङ्गारकाव्य कहते। 'रूपमञ्जरी' में उन्होंने नासिका के
 विकास को भी रीतिशास्त्र की मान्यताओं के अनुसार ही चित्रित
 किया है—

रूपमञ्जरी की वयःवधि (रूप० ८०—८६),

अद्यात् क्षीरना (१००—११०. गुलना कीबिचे रस० अद्यात्
 बालचण्ड)

... में कवि ने अंगवस्त्र धलद्वारी के नाम दिये हैं।

न—सुदृश, न—सुदृशमाना । और इनके बाद इनकी परिभाषा है । बाद नदृश है कि कवि स्वभावसे निष्ठा रहा है । कवि-रिपु इनका कोई भी सम्बन्ध नहीं है । इस प्रकार रीति-शास्त्र का न पालन वह नहीं करता है । इसी कारण से कविगणों के भाव विद्यमान करने के लिए भाव, भाव, देना और रीति का विचार नि (सुभवा के लिए सम. क. वही प्रयोग) । सभी रचनाओं पर नन्ददास (सम. क.) के प्रशंसकों का उपासक किया है । प्रेमा का प्रेमा । प्रिया है । इसमें वह समझ सकता है कि दोनों रचनाएँ लगभग ही समान की हैं, और कवि लौकिक धर्म को निति पर ही परम रति धरिण्य कर रहा है । मार्तण्डाचार्य में मयोग शूद्रार के दो कथा के अनुसारे में आई हैं—पहला प्रथम अध्याय में, दूसरा अध्याय के आरम्भ से लेकर पंचम अध्याय के अन्त तक । इस स चिन्तन में कवि सम्मयता की अन्तिम अवस्था को पहुँच गया है । यही सम्मयता इस संयोग का आध्यात्मिक पद पुष्ट करती है । समय आराधक (गोविन्द) और आराध्य (कृष्ण) का कोई भी नहीं रह गया है, ये परमानन्द की परिस्थिति को प्राप्त हैं, इसीसे धारे समय और निर्वन्धन को भूलकर पुकार उठता है—

दौरि लपटि गईं ललित लाल, सुख करत न आवे
 मीन उद्धलि सर-पुञ्जिन परे पुनि पावे
 क्रीड चटपटी छौं कर लपटी, क्रीड उर बर लपटी
 क्रीड गर लपटी कहति भले जूकान्दर कपटी
 (रास०, ४०१—४०४)

और भी आगे बढ़कर कवि कहता है—

प्रीव प्रीव भुञ्ज मेलि, केलि कमनीय बढ़ी अति
 लखिल लखिल निर्वन्धि आवे कदि आवे गति ।

छवि सौ निरुत्ति, पटकनि, लटकनि, मडल डोलनि
कोटि अमृत सम मुसकनि, मँडुलता वेई वेई बोलनि

×

×

×

मुजर्दडन सौ मिलत, ललित, मडल निरुत्त छवि
कुंडल कच सौ अरभत, उरभत तहाँ बड़े कवि

पर इसके आगे भी जाता है—

हार हार में उरभि, उरभि बहियाँ में बहियाँ
नील पीत-पट उरभि, उरभि बेसर नथ महियाँ
धम-भरे सुन्दर अंग सरस, अति मिलत ललित गति
अंशनि पर भुज दिर्यै-लियै सोभा सोभित अति
दूटी मुकामाल, छुटि रही साँवरे उर पर
मानौ गिरि तै सुरसरि, द्वै विधि धार धँसी धर

(५३०)

अन्त में भी इस रास (संयोग) को नन्ददास ने “अद्भुत रास” कहकर उस पर आध्यात्मिकता का आरोप कर दिया है जिसको देखकर—

सिला सलिल है चलो, सलिल है गयो सिला पुनि
पवन थक्यौ, ससि थक्यौ, थक्यौ उह मंडल-सगरी

(५३२-५३३)

यह तो हुआ संयोग-पद्य । विप्रलम्भ में नन्ददास और भी प्रभावशाली हैं । रूपमंजरी, विरहमञ्जरी, मँवरगीत, रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी और फुटकर पदों में शृङ्गार के इस पद्य का अत्यन्त मार्मिक चित्रण और विश्लेषण है । जो कवि ‘पलकांतर’ विरह जैसे सूक्ष्म और प्रेमविरह-भाव की कल्पना कर सकता है, उसका विरह चित्रण

मुनि मोहन-सन्देश, रूप मुमिरन है आपो
 पुलकित आनन अलक, अंग आवेश बनायो
 विह्वल है धरनी परी, ब्रजवनिता मुरझाद
 है खल-छीट प्रबोधही, ऊषो बात बनाइ

—मुनो ब्रजवासिनी (भँवरगीत २६—३

निकसि प्राण तियतन लैं, द्विज के वचननि आये
 जब बह्यो 'थी हरि आये', मनौ बहुरथी किरि आये

(कविमनिमंगल, १६१—१६:

'रूपमंजरी' के पट्टश्रुत वर्णन और सारी विरहमंजरी में गोपीविरह ही चित्रण है। यद्यपि विरह-वर्णन में शास्त्रानुसरण पर कवि उतना आग्रह नहीं है, जितना संयोग-चित्रण आदि में, फिर भी वी की दशों दशाओं के कितने ही मार्मिक चित्र हमें नन्ददास के काव्य मिल जाते हैं—

अमिलापा

अदो नाथ, अदो रमानाथ, जदुनाथ गुगार्द
 नैदनन्दन बिडराति किरति, तुम बिन बन गार्द
 बादे न फेरि कपाल ह्यै, गो-ग्वालन मुधि सेदु
 दुल-जलनिधि हम धूइही, फर अवलंबन देहु
 निदुर ह्यै कहै रदे

(भँवरगीत, १४६-१४०)

चिन्ता

हराँ कुँवरि तरफरत, किरत घर आँगन ऐगै
 रवि-कर तगत करी मझरी, पोरे खल जैसै
 चढ़ि-चढ़ि अटनि, भरोलनि, भाँकति नखल कियोरी
 बंद-उदै ष्यौ चारत, धारत सुनिन चकोरी

(कविमनी मंगल, १५४)

स्मरण

मुनव स्याम कौ नाम, ग्राम-गृह की सुधि भूली
भरि आनन्द-रस हृदय, प्रेम-बेली द्रुम फूली
पुलकि रोम सब अग भये, भरि आये जल नैन
कंठ घुटे गद्गद गिस, बोले बात न वैन
विवरथा प्रेम की

(भंवरगीत, १५)

गुण-कथन

हे शशि ! नैनन कौ पल यहै, सुन्दर प्रियतम-दरसन चहै
तिन कहूँ फल प्रिय-दरसन परै, छिन छिन बदन बिनोकन कौ
पारै अवर नदिन कहूँ परै, निशि-बासर अवलोकन करै
सौ पल शलिन सहित बन घन में, बल समेत झोलत भोगन में
मधुर मधुर पुनि वेनु बजावत, अनेक राग-रागिनी उपजावत
तानन के सँग स्निग्ध कटाछे, चलत छु मगदहँसनि के पाछे
बिन करि यह सुन्दर मुख चहौ, नैनन कौ पल तिनही लहौ

(दशमस्कंध, गोरिकागीत २५)

छट्टेग

छमकि है नैन नीर भरि आये, पुनि सुनि जाह मरादुबि पाये
पुलकि अंग मुरभंग बनाये, कीच बीच मुग्धाई आये
विकसन तन अठ देह दिव्याई, रूप बेलि जैसे धाम में आई

(रूपमञ्जरी)

अहो अशोक ! हरि शोक, लोक-मनि पियहि बतावहु
अहो पनस सुभ-भासन, प्यासन अमृत जु प्यावहु

(रासर्वचाभ्याषी, २६०)

उन्माद

इहि विधि बन घन दूँदि, बूझि उनमत की नार्द
करन लगौ मन-हरन, लाल-लीला मन-भार्द

× × ×

हरि की सी चलनि, बिलोकनि, हरि की सी हेरनि
हरि की सी गाहन घेरनि-टेरनि, वह पट-केरनि
हरि की सी बन तैं आवनि, गावनि अति रसरंगी
हरि की सी कंदुक रचनि, नचनि हूँ ललित विर्मंगी

(वही, ३१०)

व्याधि

औ कीउ कमल फूल पकरावे, हाथ न लुथै निकट घरवाधै
अपने कर जु बिरह सुर ताते, मति मुरझाहि उरति तिय याते

(रूपमंत्ररी, ३२३)

जड़ता

गोरे तन की कोति, छूटि छवि छाह रही पर
मानौ टाढ़ी कुँवरि, सुभग कंचन - अरुनी पर
बनु घन तैं बिजुरी बिजुरी, मानिनि - तन - काँडे
किधौ चंद्र सौ रुहि, पंद्रिका रहि गइ पाई
नैनन तैं बलधार, हार - धोवत पर आवत
भेंवर उझार न सकति, बास-भस मूल दिग छावन

(रासर्वचाभ्याषी, ३४०)

मूर्च्छा

विह्वल है घरनी परी, ब्रज-वनिता गुरभाइ

(भँवरगीत)

मरण

अब मो पै छिन जियौ न जाई, जो हौ कहौ सु करहि री भाई
सुन्दर सुमनन सेज बिद्याई, अरगज मरगज इसनि जसाई
चन्दन चरचि, चंद उगवाई, मद सुगंध समीर बहाई
पिक गवाई, केकी कुइकाई, पपिहा पै पीउ-पिउ बुलाई
मधुर मधुर तू बीन बजाइ, मोहन नन्द-सुवन गुन गाइ
यौ कहि कुँवरि ग्रीव अब भोई, धरहराइ तब सहचरि रोई

(रूपमंजरी, ५१८)

इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास ने 'विरह' के सिद्धान्तों का ही निरूपण नहीं किया है, उनके विरहकव्य में विरहिणी की सभी मूर्त्तियों का अत्यन्त सूक्ष्म और प्रभावशाली वर्णन है। उनकी विरह-सम्बन्धी रचनाएँ अधिकांश खंडगीतात्मक हैं, अतः उनमें इन परिस्थितियों का विकास रस की दृष्टि से हुआ है; कुटकर पदों में जिस प्रकार केवल 'भाव' की ही योजना हो सकती है, उसका यहाँ अभाव है।

५—अलंकार

नन्ददास की दृष्टि रस पर है, अलंकार पर नहीं, परन्तु वे साहित्यिक हैं। इसलिए उनकी रचनाओं में अलंकार स्वतः ही आते हैं। सुरदास ने उनके लिए 'साहित्यलहरी' (१६०७ में) की थी जिसमें उन्हें नायिकाभेद और अलंकारों की शिक्षा दी थी,

आवश्यक नहीं कि रचना में अलंकारों की माला ही गुँथ दी जाय इसी से उन्होंने केवल कुछ भी अलंकारों का प्रयोग किया है। वे अलंकार स्वाभाविक रूप से ही उनके काव्य में आते हैं जैसे—

अनुप्रास

हे चन्दन, मुस्तबन्दन सब की बरन बुझावहु
नदनन्दन, जगबदन, चंदन हमें बतावहु

रूपक

नव मरकत मणि श्याम, कनक मणिगण ब्रजवाला

वस्तुप्रेक्षा

शुन्दावन को रोझि मनो पहिराई माला

उपमा

(१) सखिसौ वह लखटनि अलपेली
अदभती हेम प्रेम अनु बेली

(२) नये धौरद्वर मुखर, मुवास
अनु घर पै दूसर कैलास

(३) महाव को अबौ आवति रात, भट दे मोहि लीलि ही आति
मदन दादविच ही दे चँपै, तिहि दुख ताको तन मन कैपै
रवि औ तनिक न लेह लुझाह, तौ मोहि निहा बकी गिलि आह

यही कुछ उनके प्रमुख अलंकार हैं जिनका बार-बार अरबन्त सुन्दर प्रयोग हुआ है। कितने ही प्रयोगों पर पूर्ववर्ती कवियों और घर की छान है जैसे

नगशा निकमति तोर अब, नीर चुवत घर भीर
श्रमुवन रोवत घसन अनु, तन बिहुरन की पीर

एक ही तुलना विद्यापति के इस पद से कीजिये—

सबल चीर रह पयोधर सीमा । कनक बेलि जनि पड़ि गेलि हीमा ॥
 श्रौनुकि करताहि चाहे किए देहा । अबहि छोड़त मोहि तेन न नेहा ॥
 एगन रस नहि पाउव आरा । इये लगि रोह गलय जलधारा ॥

इसी प्रकार वयःसंभि और यौवनागम के चित्रण में विद्यापति के काव्य का विशद प्रयोग है। रूपवर्णन में विद्यापति और सूर दोनों ही कवि को प्रभावित कर रहे हैं। और शब्दालंकार के लिए कवि पर स्वयं रूप से जयदेव के श्रुतिमधुर काव्य का प्रभाव है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने पूर्ववर्ती सारे साहित्य से अपने काव्य को पुष्ट किया है और अलंकारों के समीचीन प्रयोग से उसे सुन्दर बनाया है।

६—छन्द

मन्ददास के काव्य में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है परन्तु मुख्य छन्द कुल्लु योड़े ही हैं। इन्हें कवि ने अच्छी तरह मॉज लिया है और वे उसकी अपनी विशिष्ट चीज हो गये हैं। इसी श्रम्यास-बहुलता के कारण उनमें कला का रूप अत्यन्त स्वाभाविकता से समाविष्ट हो गया है। उनके ग्रंथों में छन्दों के प्रयोग की तालिका इस प्रकार है :—

(१) पंचमंजरी ग्रंथ और दशमस्कंध—इन ग्रन्थों में चौपद, चौपद और दोहा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। चौपद १५ मात्राओं का छन्द है, चौपद १६ मात्रा का, परन्तु कवि ने इस भेद पर ध्यान नहीं रखा है, कहीं १५ मात्रा, कहीं १६ मात्रा का छन्द लिखता गया है। वास्तव में चौपद-चौपद का यह अमेद और तुलसी-आयसी को भी रचनाओं में मिलता है। इससे

सूरदास ने एक भ्रमरगीत में रोला और दोहा की ऐसी ही आशोचना की है और नन्ददास ने वहीं से इस छन्द में भ्रमरगीत लिखने की प्रेरणा ली है, परन्तु एक अन्य स्थल पर सूरदास ने दस माघा की टेक के साथ इस मिश्रित छन्द का भी प्रयोग किया है। अतः प्रयोग सर्वथा मौलिक नहीं है फिर भी इसका रूप सूरदास से निखरा है।

(४) अनेकार्थमंजरी, नाम माला—इन ग्रन्थों में दोहा छन्द का प्रयोग मिलता है। दोहा-चौपाईवाले ग्रन्थों में कहीं कहीं बीच में सोरठा भी मिलता है। सोरठे में दोहे का उलटा मात्र क्रम है (१२, १३)। इसलिए कभी-कभी उसके प्रयोग से काव्य की समरसता जाती होती है। इसीलिए दोहों के बीच-बीच में, या साथ सोरठे का प्रयोग है।

(५) कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि—ये रीतिकान्य के प्रमुख हैं, परन्तु भक्तिकाव्य में भी इनका काफी प्रयोग हुआ है। तुलसीदास की 'कवितावली' में ये सभी छंद अत्यंत प्रौढ़ रूप में मिलेंगे। उसे यह पता चलता है कि काव्य के मुक्त रूप के लिए जिस धार दोहा कबीर के समय से चला आता था, उसी तरह भक्ति-काल के साथ ही काव्यप्रधान या भावपूर्ण मुक्तक विचार के रूप में प्रयोग आरम्भ हुआ। सूरदास ने भी इन छन्दों का प्रयोग किया, और नन्ददास ने भी, परन्तु इन दोनों कवियों में ही हम इन्हें अति-मिश्रित एवं अविच्छिन्न रूप में पाते हैं। नन्ददास का यह कवित्त श्रेष्ठ ही है—

हृत्पनाम चरते भवन मुन्वी री खाली,
भूली री भवन री ली बाबरी भई री

आचार नहीं है, परन्तु यह नहीं है कि छन्दों का कोई ऋिगल ही नहीं बनाया जा सके। अधिकांश पदों पर सगीत की "ध्रुपद"—शैली की छाप है, जिसका प्रचलन मध्ययुग के राजदरबारी संगीत में विशेष था जैसे इस पद में

चटकीली पट लपटानो कटि,
बंसीबट बमुना के तट ठाढ़ो नागर नट ।
मुकुट लटक और कुंडल चटक
भ्रुकुटी विकट तामे अटकयो री मेरो मन ।
चरण लटपटे आछे कनक लकुर
चटकीली बनमाल ।

कर टेके द्रुम डाल टेड़े ठाड़े
नन्दलाल छब छ्वाई घटपट ।
नन्ददास प्रभु प्यारी बिन देखे गोपी ग्वाल
टारी न टरत याले निपट निकट आवे सोये की लगत ।

यहाँ 'र' 'ल' अनुप्रास की प्रधानता और ८८ वर्णों के टुकड़ों का प्रयोग एवं वर्ण-संधर्भ और वक्तता ध्रुवपद गाविकी की विशेषता की ही उन्मुल कर रही है। कविता का सारा ढाँचा और सौन्दर्य यहाँ इसी गाविकी शैली पर टिका है।

८—भाषा-शैली

"नन्ददास में दो गुणों की प्रधानता है। वे दोनों गुण हैं माधुर्य और प्रसाद। माधुर्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानो आनुर एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा हुआ है। शब्दों में कोमलता है। प्रकृतियों में न तो सतृप्तता है और न लगने-बाँधे

अर्थ अग्नि अति आलस घोरे।”

(हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६६०)

“शब्दचित्रों से नन्ददास ने मधुर ब्रजभाषा को और भी मधुर बना दिया है। रसावेश से हर्षित लटकते हुए कृष्ण ने कुमुम धूम से घले कुंज में प्रवेश किया जहाँ मधुहरी के कुंज थे। इसका वर्णन कवि करता है—

कुमुम धूरे धूंधरी कुंज, लडवि पुंजन धुई
गुजत मनु अलिद, बीन बनु बजत सुझई

य शब्द-कूट में ‘धू’ की कुमुम-धूलि कई बार उड़ रही है, ‘म’ की मरावृत्ति में भौंते की गुंज सुनाई पड़ रही है और यद्यपि कवि ने बल इतना ही कहा है कि वहाँ भौरे हैं, फिर भी हम स्पष्ट सुन रहे कि वहाँ भौरे हैं। पहला पद एक कुंज की तरह है। अनुस्वार वर्ण धन पल्लवों की तरह ‘र’ तथा ‘ध’ आवेष्टित किये हैं, ‘ज’ की पुनरावृत्ति ने मधुकुंज में शंखेरा कर दिया है। सदृश ही दूसरा पद हुलसता जाता है जो श्रीकृष्ण की भाँति लटककर उस पहले पद के कुंज में प्रवेश कर जाता है।

दूसरा शब्द-चित्र देखिये। सघन कुंज में चद्रमा की पतली किरन कलमिलाती हुई, काँती हुई गिर रही है—

फटिक-छटा सी किरन, कुंज रघनि जव आई
मानहुँ वितन बितान, सुदेश तनाव तनाई

‘र’ का उच्चारण ओष्ठ से होता है। इसलिए ‘फटिक’ के करते ही ठ गुल जाते हैं। ‘ल’ का उच्चारण तालु से होता है। इसलिए ‘छ’ कहते ही होंठ और खुल जाते हैं और दाँतों की फटिक स्पर्शता भाँति देनी है। यथ, दंतपंक्ति-ही सा स्पर्श किरण का वर्ण है। किन्तु यह ‘किरण’ नहीं है, ‘किरन’ है, क्योंकि ‘कुंज के सघन रंग’ से नती आ रही है।

यह तो स्वरूप का चित्र हुआ । अब गति का एक चित्र देखिये—

मंद मंद चलि चाक चन्द्रमा अस लुभि पाई
उभक्त है कनु रमारमन, प्रिय कौतुक आई
। पद में अधिक वर्णन ह्रस्व हैं। इ, उ, सब छोटे हैं। पद अत्यन्त
रे-धीरे चल रहा है, जैसे चन्द्रमा में आकाश।”

(नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०, १९३६—१९४०, नन्ददास,
यमुप्रसाद बहुगुणा)

ऊपर के दो अवतरणों में नन्ददास की भाषाशैली की विशेषनाएँ इस
रूप हैं—

- (१) माधुर्य गुण और प्रसाद गुण
- (२) समास-पद्धति
- (३) वर्णों के नादात्मक प्रयोग द्वारा शब्द-चित्र और मूर्त-चित्र
रिचित करना ।

(४) ह्रस्व वर्णों का कलापूर्ण प्रयोग

कला की दृष्टि से नन्ददास को सब से सुन्दर पुस्तक ‘राष्ट्रपंचाध्यायी’
। हिन्दी-साहित्य में जयदेव के “गीतगोविन्दम्” की माधुरी
जोड़ यही ग्रंथ कर सकता है। कदाचित् यह भ्रम भी है कि नन्ददास
जयदेव की शैली को ग्रहण किया है—ऐसी भुक्ति-मधुर और कोमल-
उपदावली और कही नहीं मिलेगी। बात केवल इतनी है कि जयदेव
भाँति नन्ददास ने भी खोज खोजकर सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया
। जयदेव की खोज केवल संस्कृत तक है, परन्तु नन्ददास को संस्कृत
र ब्रजभाषा दोनों में खोज करनी पड़ी है। संस्कृत शब्दों का
रूप देखिये—

नाहिन उधरे गूढ़ न ऐसं, मन्ददास जेन
 पुनि कवि अपने मन में गुन, मा क ने क
 रह-विहीन को अस्वर सुनही, त अ-
 बाला-स्मित, कदाच्य, श्री लाल, अ

(१५)

मन्ददास की शैली का प्रयोग भाषा में प्रयोग
 कम महत्वपूर्ण नहीं है। वे दोनों प्रकार के प्रयोगों को
 करते हैं—आलंकारिक अनालंकारिक। उपमा, उल्लेख,
 उपमा, उल्लेख, रूपक आदि आलंकारों में मन्ददास का
 आलंकारिक भाषा की कवि ने गूढ़ता की है। मन्ददास का
 अस्मृत संगीत है, और हृदय को चलाकर केवल
 ('मन्ददास', पृ० १११, भू-वक्र)। कवि ने मन्ददास का
 पुष्टि में उपमाओं की इतनी जल्दी-जल्दी नहीं की है कि
 उसकी कला पर मुग्ध हो जाते हैं। अतः मन्ददास का
 अर्थान लिखता है, यहाँ भी मन्ददास का अर्थान लिखता है
 प्रयोग के विषय में अति सावधान है। मन्ददास का
 निरालंकारिक भाषा भी एक सुन्दर नमूना है। मन्ददास का
 कहते हैं।

अतः मन्ददास में, इन तरह तरह सन्त है। मन्ददास का
 पुष्ट है, मन्ददास से भी अधिक कवि मन्ददास का
 कारण ही बनता है उन 'मन्ददास' का अर्थान लिखता है
 के कारण यहाँ 'काव्य' का अर्थान लिखता है। मन्ददास का
 इसे अस्मृत रगता है मन्ददास का अर्थान लिखता है
 मन्ददास का भी समानेह ही बात है। मन्ददास का
 अर्थान लिखता है।

दक्षिण की ओर प्रयाण किया। वे विद्यानगर की राजधानी में राजा कृष्णदेवराय के यहाँ पहले पहुँचे। यहाँ एक महती सभा थी। व्यासतीर्थ नामक एक मध्व सम्प्रदाय के आचार्य अभ्यक्ष थे। उस समय उस सभा में एक शास्त्रार्थ चल चुका था और ब्रह्मवादियों को मायावादियों ने पराजित कर दिया था। वल्लभ ने ललकारकर मायावाद का खण्डन किया और शुद्ध ब्रह्माद्वैत का प्रतिपादनकर विपक्षियों पर विजय-पताका पहनाई। राजा के आग्रह से वे कुछ दिनों के लिए वहीं रह गये परन्तु उसके दिये द्रव्य के अर्धांश से एक रत्नत्रयित स्वर्ण-मेलला बही की विठ्ठलमूर्ति को समर्पित की। व्यासतीर्थ उन्हें मध्व सम्प्रदाय में दीक्षित करके अपनी गद्दी देना चाहते थे, परन्तु वल्लभ का आग्रह किष्णुस्वामी के मत की ओर अधिक था। “विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की पुष्टि सारस्वत कल्पीय, उसका सिद्धान्त वेद-गीताव्यास-सूत्र भागवत-प्रतिपादित और आचार्य भगवन्मुख स्वरूप वैश्वानर एवम् उपास्यरूप शुद्धवागामृतःन्धीन्दुं धी गोपोजनवल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण है” (सम्प्रदाय प्रदीप, गदाधर द्विवेदी, सं० १६१०)

विष्णु स्वामी सम्प्रदाय के एक आचार्य विल्वमंगल ने उन्हें सत्र में आदेश दिया—“अन्य सम्प्रदायों (रामानुज, मध्व, निम्बार्क) में नारदपञ्चरात्र व्याससूत्रादि-शास्त्र प्रतिपादित दीक्षा-पूजा का प्रचार होने से यद्यपि विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में आत्मनिवेदनात्मक भक्ति की स्थापना की गई है, यद्यपि यह मार्गशामार्गीय है। अब आपके इस सम्प्रदाय में पुष्टि (अनुग्रह) मार्गीय आत्मनिवेदन द्वारा प्रेम-स्वरूप निर्गुण भक्ति का प्रकाश करना है। सम्प्रति भक्तिमार्गानुयायी जन-समाज शांकर सिद्धान्त के प्रचार बाहुल्य से पथभ्रष्ट हो रहा है, अतः उसके कर्तव्य तो आपके द्वारा ही सम्मत् हो सकते हैं” (वही, पृ० ८८)

कल दिनों का कल का... ने विष्णुस्वामी को... और...

गुरुदेव के दृष्टिकोण में मान्य किया। उन्होंने परिश्रम, इशियार और धन-वीर्य की साधारण की। ८४ स्थानों पर भागवत का उक्त पाठ्य किया। ये स्थान अब 'बल्लभाचार्य की बैठक' के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार उन्होंने ब्रजन मठ में ३ बार परिक्रमार्थ की और स्थल-वचन पर भागवत का गताद-पारायण, भक्ति (पुष्टि) मार्ग का प्रचार और शास्त्रार्थ द्वारा गुरुदेवमन की स्थापना भी की। कृष्णदास मंचन उनके गुरु के रूप में इन पात्राओं में उनके साथ रहे। उस समय के अन्य सम्प्रदायों के अनुयायी रामानन्द और शंकर मिश्र (प्रभुदास) प्रभृति पंडित उनकी भागवत-श्रीका सुनकर उनके सेवक हो गये।

प्रभु की प्रेरणा से काशी आकर बल्लभाचार्य ने गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश किया और पंडित देवदत्त मठ की कन्या से विवाह किया। इसी समय उन्होंने 'पञ्चावलम्बन' लिखकर मायावाद के लड़न में श्लोक रचे और शास्त्रार्थ का आग्रह किया। उस समय सब जगह शंकर अद्वैत का ही मान था जिसमें ब्रह्मा निर्धर्मक, निराकार है; प्रथम मिथ्यास्वरूप, मायाकृत है और जीव चैतन्यस्वरूप ब्रह्म है। बल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत की स्थापना की। उन्होंने कहा कि ब्रह्म विरुद्धधर्माध्य है, प्रथम भगवत्कृत होने से सत्य और संसार अद्वैताममतात्मक होने से मिथ्या है और जीव भगवदंश-अणुस्वरूप-विष्विगुण-चैतन्य है। अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में उन्होंने चार प्रकार के ग्रन्थ प्रमाण माने १—उपनिषद्, २—गीता, ३—उत्तर-मीमांसा (व्यासकृत) और ४—भागवत। इन्हें इन्होंने प्रस्थान चतुष्टय कहा है। इससे पहले के आचार्यों ने पहले तीन ग्रन्थों को ही प्रस्थान त्री के नाम से प्रमाण माना था। भागवत के प्रमाण रूप पर उन्हें विशेष आस्था थी—उन्होंने कहा है 'भागवत भगवान् वेदव्यास की समाधि भाषा है।' (वही, पृ० ६८)

परन्तु काशी में फिर भी मायावाट का प्राबल्य रहा, इसलिए बल्लभ कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने के लिए पाठ के चरणघाट गाँव में रहने लगे। इसके अनन्तर प्रभु की प्रेरणा से वे नित्यलीलाखल गोकुल में निवास करने लगे और वहाँ उन्होंने भगवत्सेवा का आदर्श स्थापित किया। वे वृन्दावन में एक मंदिर बनवा कर सपरिग्रह सेवा करने लगे। यहीं काशी के भक्त पंडित जेशव भट्ट से उनकी मैत्री हो गई। वृन्दावन में उन्होंने सत्साहचर्य भी किया और फलस्वरूप केशव भट्ट के शिष्य माधव भट्ट आदि भी इनके शिष्य हो गये। इन्हीं के द्वारा 'मुञ्जोधिनी' लेखन का आरम्भ हुआ। श्रीबल्लभ सपरिवार गोकुल से आकर श्री गिरिराज की उपत्यका में श्रीनाथजी की सेवा करते हुए रहने लगे। उन्होंने मुक्ति की अपेक्षा भगवत्सेवा को ही बड़ा माना।

एक बार वे गोकुल से प्रयाग होकर जगन्नाथपुरी गये। वहाँ श्रीकृष्ण चैतन्य से उनका साक्षात्कार हुआ और दोनों में घनिष्ठता हो गई। कुछ समय बाद (संवत् १५६७) गोपीनाथ का जन्म हुआ और वे ब्रजमंडल लौट आये। यहाँ वे श्रीकृष्ण की बाललीला में तल्लीन हो गये। उन्होंने दारुणा, बद्रिकाश्रम अनेक स्थानों पर पुष्टिभक्ति का प्रचार किया।

इस प्रकार अपने जीवन-कर्तव्य को समाप्त कर वे त्रिवेणी तट पर अद्वैत में रहने लगे। यही सं० १५७८ ई० में विठ्ठलनाथ का जन्म हुआ। वे ग्रंथों की रचना में लगे। ये ग्रंथ हैं—निबन्धध्वज, पौष्ट्य ग्रंथ, अणुभाष्य, भागवत की मुञ्जोधिनी टीका जिसमें भागवत के स्कन्ध १, २, ३, ४ का कुछ अंश और १० की टीका है। इसके उपरान्त उन्होंने ये सन्धास धारण कर लिखा और 'सन्धासनिर्णय' ग्रंथ की रचना की। वे भक्तिविद्य में काशी पहुँचे। यहाँ उन्होंने 'शिक्षा-श्लोक' रचकर अपने दोनों पत्रों को अतिम उपदेश दिया और यही काशी की

शुद्धाद्वैत दर्शन

वैशा हमने ऊपर बताया है, बलभाचार्य के दार्शनिक मतवाद को ही शुद्धाद्वैतदर्शन कहा जाता है। इतना निश्चित है कि आचार्य श्रीबल्लभ शुद्धाद्वैत के सर्वप्रथम प्रवर्तक नहीं थे। अक्सर ही इसका प्रचार, उन्होंने ही किया और कई ग्रन्थ इस मतवाद के प्रकाशन में लिखे। उन्होंने ब्रह्मसूत्र पर अणुभाष्य, भागवत की व्याख्या मुमुक्षुभिनी, विद्वान्तरहस्य, भागवतलीलारहस्य, एकान्तरहस्य, विष्णुसूत्र, अन्नः-करणप्रबोध, आचार्यकारिका, आनन्दाधिकरण, नवरत्न, निरोधलक्षण और उसकी विवृति, संन्यास-निर्णय आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। इसमें विद्वान्तरहस्य और भागवतलीलारहस्य ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए हैं। विष्णुसूत्र हिन्दी भाषा का ग्रन्थ है। इसमें विष्णुगुण प्रतिपादक कुछ पद हैं।

(कल्याण, वेदान्तांक पृ० ७०१)

इसी ग्रन्थों के आधार पर शुद्धाद्वैत दर्शन की विवेचना होती है।

१—ब्रह्म

“आचार्य बल्लभ ब्रह्म को साकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वत्र और सच्चिदानन्द रूप मानते हैं। उनके मन में ब्रह्म शुद्ध, माया आदि ब्रह्म में नहीं है। ब्रह्म निर्गुण और प्राकृतिक गुणों से अतीत है। वे गुणातीत होने पर भी जगत के कर्ता हैं। ब्रह्म की कृति अचिन्त्य और अनन्त है। वे सब कुछ ही सकते हैं, अणुतक जगत् में विद्यमान सभी और ब्रह्म वाक्यों का भी पुण्यन् सप्तादेश ही सत्त्व। उनके मत में ब्रह्म ही जगत के निमित्त और उत्पत्ति कारण है। कर्ता भी है और भोक्ता भी। वे कर्ता होने पर भी निर्विकार हैं। सादानकारण होने पर भी उनमें संसार-धर्म नहीं है।”

जगत सत् है। हरि की इच्छा से ही जगत का आविर्भाव हुआ है। हरि की इच्छा से ही जगत का तिरोधान होता है। ब्रह्म लीला के लिए अपनी इच्छा से जगत-रूप में परिचित हुए हैं। जगत ब्रह्मात्मक है। प्रपंच ब्रह्म का ही कार्य है। आचार्य वल्लभ अविकृत परिणामवादी हैं। उनके मत से जगत मायिक नहीं है और न भगवान् से ही भिन्न है। उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं। जगत सत्य है, पर उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। जगत का जब तिरोभाव होता है तब वह कारण रूप से और जब आविर्भाव होता है तब कार्य रूप से स्थित रहता है। भगवान् की इच्छा से ही सब कुछ होता है। क्रीड़ा के लिए ही उसने जगत की सृष्टि की—अपेक्षे क्रीड़ा सम्भव नहीं, इससे भगवान् ने जीव और जगत क सृष्टि की।”

सत्यरूप ईश्वर से उत्पन्न जगत् असत्य कैसे होगा। कारण के गुण कार्य में अवश्य प्रकटित होने हैं। जनप्रपंच भगवत्कृत है, मायाकृत असत्य नहीं। वल्लभाचार्य के सिद्धांत में नामरूपात्मक सृष्टि सत्-नित्य है क्योंकि दोनों के सर्वविध कारण भगवान् हैं। प्रपंच को मिथ्या, मायामय, स्वप्नमय, बतलानेवाले वाक्यों का अभिप्राय जीव को वैराग्य उत्पन्न कराना मात्र है।

प्रपंच को सत्य, भगवत्स्वरूप मानने पर ही बायों की उत्पत्ति है। सभी कर्म, ज्ञान, भक्ति सत्य होकर फल प्रदान करेंगे, नहीं तो प्रपंच असत्य होने पर धर्म, कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि पुरुषार्थ तथा तन्त्रमय फल भी असत्य और अवास्तविक होंगे। भुक्ति ने स्वयं कहा है—सर्वं क्षणिकं ब्रह्म। प्रपंच ही ब्रह्म है। प्रपंच की असत्यता के लिए सृष्टि रस और रञ्जुष का एक उपस्थित किया जाता है। आचार्य कहते हैं कि मिथ्याज्ञान के लिए भी क्रीड़ा सम्भव नहीं है।

वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्ग

मानसी सेवा फलरूपा है और द्रव्यापेक्ष तथा शारीरिक सेवा रूपा ।

आचार्य ने धर्म, ज्ञान और भक्ति तीनों मार्गों में मोक्षलाभ है । परन्तु सर्वोत्तम फल भक्ति द्वारा ही प्राप्त होता है क्योंकि 'पूर्व' पुरुषोत्तम' में लीन हो जाता है, ज्ञानी 'अक्षर ब्रह्म को होता है और कर्मकाण्डी केवल स्वर्ग पाता है । ये उत्तरांत स्थितियाँ हैं ।

साधना की सबसे ऊँची स्थिति वह है, जब कोई मा रहता । भक्त भगवान् पर पुर्यातः आश्रित होता है । भगवान् ही पालन करते हैं । तब वे विशेष अनुग्रह (पुष्टि) कर उनके सौलता' रचते हैं । गोपियों इस पुष्टि का सर्वोत्तम उदाहरण है ।

इस प्रकार वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों ने दार्शनिक अगत कान्ति उपभूषित कर दी और धर्म पर गहरी छाप छोड़ी । हम है कि शङ्कर के मायावाद (अद्वैत वेदान्त) में भक्ति को केवल वह भी व्यावहारिक स्थान, मिला था, परन्तु बाद की अद्वैत पर एक प्रकार की भक्ति की परम्परा चल पड़ी । इसमें भक्त नि प्रति माधुर्य भाव से प्रेरित होता था । वल्लभाचार्य ने दार्शनिक से मायावाद का विशेष क्रिया परन्तु वैसा वह अद्वैतवादा ही रहे उन्होंने अद्वैत भक्ति का प्रचार किया स्वयं उसका माधुर्यपूर्ण स्वीकार करके सेवामाधुर्य रूप ही उन्हें प्रथम हुआ । भा

रहता है। अन्त में अहंकार-ममता-रूप संसार का नाश हो जाता है। पुष्टिमार्गीय भगवद्गुणों की प्राप्ति की कामना रखता हुआ शुद्धभक्त, भागवत, शरणवाचन आदि में लगता है। अन्त एक ही है, मर्षादामार्गी को भी वही फल मिलेगा परन्तु उस अनुग्रह की तो अपेक्षा देगी। इसीसे भक्तिमार्ग (पुष्टिमार्ग) ज्ञानमार्ग (मर्षादामार्ग) से ऊँचा है। वल्लभाचार्य दोनों मार्गों को सामने रखते हैं—वे ज्ञानमार्ग से विरोधी नहीं हैं (यूँ ही नन्ददास के भ्रमरगीतों में भी ज्ञान और भक्ति की खिल्ली उड़ाई गई है, वह समतामयिक धार्मिक परिस्थितियों की रक्षा का प्रभाव है। वल्लभाचार्य के सिद्धान्त को उनमें देखना भूलें)। जिस मर्षादामार्ग को उन्होंने वैध बनाया है, वह ज्ञानमार्ग ही है।

आचार्य ने तनुजा सेवामार्ग के तीन प्रकार बताये हैं। मन्दिरमार्जन, प्रसादन आदि (पादसेवन), पंचामृतस्नान, संकल्प, आध्यात्मनदि उपचार (अर्चन भक्ति), स्नेहानुसृत वस्त्रानुपय भोगराग सेवा (रक्ष)। इन्हीं में सबका समावेश है।

पुष्टिमार्गीय भक्ति नवधाभक्ति से एकान्तकः भिन्न नहीं है। वल्लभाचार्य भी नवधाभक्ति मानते हैं—

बल्लभाचार्य का शब्द 'निरोध' का अर्थ है—

श्री शिवा नहीं देने। भक्त को तब तक प्रेम नहीं करने देता है।
 करने हैं—कि सन्ध्या-भक्त का शिवा नहीं देने का अर्थ है
 बाँधनीय नहीं। भक्तिमार्ग में मगवान् मगवान् का अर्थ है
 दुःखकर है।

परन्तु पुष्टिमार्ग की मायना से मगवान् का अर्थ है—
 इस अवस्था को पहुँचकर मगवान् का अर्थ है। मगवान्
 भूलकर प्रभु से आत्मिक होने का अर्थ है। मगवान् का
 महान् ने इसे स्पष्ट किया है (निरोध अध्याय, १०)। मगवान्
 कयोदा और गोपीगण का अर्थ है। मगवान् और मगवान्
 उच्चतम ध्येय कहा गया है—एवमात्मा शिव प्रसन्न दया से तब
 मात हुआ। उन्ने कीर्तन, मगवान् का अर्थ है। मगवान् का
 के प्रश्न में आने पर जो महान् उन्ने हुआ (गोपिकादिभ्यः) मगवान्
 को भी लाभ करना है। इस प्रकार हमें देखा है कि पुष्टिम
 का 'निरोध' विरह की साधना का ही नाम है—

विकलत्वत्पथाऽम्भस्थथ प्रकृते प्राकृत नहि

शान्तं गुणाश्रय तमैव बतमानस्य बाधकः।

(विरह से उत्पन्न उन्माद तथा अप्रति प्रकृति न न रहना—ये दो
 विरह की अवस्था हैं। मगवान् का शान्त और गुण सभा अवस्था
 बतमान भक्त के भाव को बाधक है।

हरि के विरह का अनुभव होने के लिए शब्दों का परित्याग
 उत्तम है, परन्तु निरन्तर विरह-भाव में भिन्न हुई प्राण ही साधक
 है, और साधन की आवश्यकता नहीं है। मानना सदा के फल है—
 (१) अलौकिक सामर्थ्यदान (लीला देवता का दान), (२) भिन्न
 मनोरथ फल (संत रहने का फल)। (३) अज्ञान (लीला से प्राप्त)

‘सेवा’ से बल्लभ का अर्थ उपासना (साधारण पूजा) नहीं ।
उसमें भावना की ही प्रधानता है । साधारण पूजा में कर्मकाण्ड प्र-
धान है—यहाँ भावना प्रधान है । यह भावना नन्द-गोपी, यशोदा गोर के रूप
है । उपचार महत्वपूर्ण नहीं हैं । असल चीज़ पुष्टि है जिसके नि-
दान, कर्म, भक्ति किसी की भी आवश्यकता नहीं । वह तो भगव
का अनुभव है । साधारण रूप से ८ दर्शन (उपचार) हैं—मंगल
काल, शृंगार, राजभोग, उत्थापन, संध्या-आरती, शयन । (विप्रे
विवरण के लिए श्लोक की दूसरी पुस्तक ‘सूर साहित्य की भूमि
पठनीय है) ।

बाद में भी ‘भावना’ की प्रधानता रही । गोकुलनाथ, हरि-
और द्वारकाधीश ने कई भावनाग्रंथ लिखे । वास्तव में सेवा प्रक
की विशद योजना विठ्ठलनाथ ने की । उन्होंने सगीत, कविता, चित्ररत्ना-
सभी को कृष्ण की सेवा में लगाया । होली, दीपावली, अक्षय तृती-
आदि त्योहारों और कृष्ण सम्बन्धी उत्सवों का आयोजन भी उन्होंने ।
किया—इसे ‘नैमित्तिक कीर्तन’ कहा गया, दैनिक कृत्य ‘निरप’ रहा
अष्टह्राप के अष्टिकांश पद इन्हीं ‘निरप’ और नैमित्तिक कीर्तनों
लिए बने ।

श्री बल्लभाचार्य के बाद गोपीनाथ गद्दी पर बैठे (१५८७ म०
और उनकी मृत्यु के बाद विठ्ठलनाथ (१५६१ म०) । ये ‘गो-छाईजी’ के
नाम से प्रसिद्ध हुए । इन्हीं से बल्लभ सम्प्रदाय का विस्तार हुआ
शुद्धाद्वैत और पुष्टि की व्याख्या में इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे—बल्लभ
कृत ‘सुशोचनी’ पर टिप्पणी, शुद्धाद्वैत प्रसिद्धादक ग्रन्थ ‘श्रीविद्वत्-
मरदन’ इनके ग्रंथों में साहित्य की
की शृंगार निहा पर कई ग्रंथ हैं

कृष्णभक्ति का प्रवेश बंगाली वैष्णवों द्वारा हुआ परन्तु श्रम्य शक्तिशाली सम्प्रदायों का भी उदय हुआ । योड़े ही दिनों कई कृष्णभक्ति-सम्प्रदायों का केन्द्र हो गया जिनमें मुख्य ये—

- १—गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय
- २—बल्लभाचार्य का गुण्डिभक्ति सम्प्रदाय
- ३—द्वित्द्विचर का राधास्वामी सम्प्रदाय
- ४—हरिदास का टट्टी सम्प्रदाय

इनमें गौड़ीय सम्प्रदाय ही अत्यन्त कुछ प्राचीन है, परन्तु तीनों सम्प्रदाय बहुत कुछ समकालिक हैं । बल्लभ की मृत्यु (१६ ई०) तक शेष तीनों समकालिक सम्प्रदाय बहुत अधिक विकसित हो चुके थे । इन तीनों सम्प्रदायों में राधा का अस्तित्व था, कहीं गुण्डि मूर्ति की प्रति स्तूत थी, कहीं राधा को स्वामिनी मानकर उन्हें पूजे से भी ऊँचा दर्जा दिया गया था । द्विती सम्प्रदायों में गुण्डि का विशेष प्रभावशाली हुआ, परन्तु यह विद्वान् के समय (१४६२ ई० १६४२ ई०) को बान है । राधास्वामी अथ टट्टी सम्प्रदायों में राधास्वामी सम्प्रदाय की मान्यता विशेष थी । दोनों सम्प्रदायों के प्रवर्तकों राधास्वामी सम्प्रदायों द्विती पद इसे आज भी उपलब्ध है । सम्प्रदायों में राधा की जो प्रतिष्ठा थी, उसका भी प्रभाव गुण्डि पर पड़ा होगा । इनमें द्विती सम्प्रदाय के प्रवर्तक द्विती के काल के सम्भव में सम्भव है । राधास्वामी सम्प्रदाय काले १६४३ ई० मानते हैं, परन्तु द्विती के विद्वान् १६६६ ई० के मान्यता के अनुसार ही मानते हैं । यह भी इनमें एक प्रभाव सम्प्रदाय की स्थापना की थी सम्भव (१६६६ ई०) में गुण्डि के काले सम्भव में ही मूर्ति स्थापना की । इनका प्रभाव बल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तकों के सम्भव में सम्भव है ।

हरि रसना राधा-राधा रट

अति अधीन आतुर यद्यपि विय कहियत है नागर नट
संक्षम द्रुम परिभन कुञ्ज दूटत कालिदी तट
विश्रपत हैसत विपीदत स्वेदत सुभ सीचने अंसुवन वंशीवट
अंगराग परिधान बसन लागत ताते जु पीतपट
जयध्री हितहरिवंश प्रशक्ति श्यामा दे प्यारी कचन घट

श्री हितहरिवंश राधा को कृष्ण की विवाहिता मानते हैं, हरिदास भी ऐसी ही मानते हैं। इनके काव्यों ने सुरदास को अवश्य प्रभावित किया होगा, विशेषकर निकुंज-केलि जैसे पदों ने जिनमें एकांत तन्मयता के द्वारा राधा-कृष्ण की एकात्मता प्रकट की गई है। स्वयं हितहरिवंश के काव्य और चिंतन पर जयदेव का व्यापक प्रभाव जान पड़ता है। दोनों के मङ्गलाचरण श्लोकों की तुलना से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है—

मेपैमेदुरअंशरं मनसुवः श्यामाक्षमाल द्रुमै-
नंक्तं भीकरयं त्वमेव तदिदं राधे एहं प्रापय
हरयं नंद निदेशतश्चलियोः प्रत्वध्व कुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलवः
(जयदेव)

यस्याः कदापि वसनांचल खेलनोत्थ
घन्याति धन्यपवनेन कृतार्थमानो
योगीन्द्र दुर्गमगतिर्मधुवदनोऽपि
तस्या नमोऽस्तु ब्रजभानुधुवोदिशोऽपि

दोनों में मूल भावना एक ही है। इस प्रकार जयदेव के काव्य ने

इन विठ्ठलनाथ की आयु १६ वर्ष की थी। २१ वर्ष की आयु में उन्हें संप्रदाय की गद्दी मिली। तब सूरदास ५६ वर्ष के वयोवृद्ध थे होने और सूरसागर का प्रमुख भाग उन्होंने समाप्त कर दिया होगा। विठ्ठलनाथ के गद्दी पर बैठने के १० वर्ष बाद हम उन्हें 'सूरसारा-रत्नी' लिखते पाते हैं। विठ्ठलनाथ की रचनाओं को देखने से यह स्पष्ट रूप से पता लगता है कि उन्होंने राधा को विशेष महत्त्व दिया और शृंगारभाव से पुष्ट मधुरभक्ति को भी ग्रहण किया। उससे पहले शक्त्यभक्ति ही संप्रदाय में मान्य थी। परन्तु फिर भी यह मधुर भक्ति उस प्रकार की भक्ति नहीं थी, जिस प्रकार की भक्ति अन्य संप्रदायों में थी। यहाँ आराध्य कृष्ण ही थे, राधा नहीं क्योंकि—

मन में रखो नाहिन ठौर

स्दनन्दन अल्लुत कैसे आनिए डर और

रन्तु राधा ही तो कृष्णतत्त्व का रहस्य जानती है—

राधा परम निर्मल नारि

कहति ही मन कर्मना करि हृदय दुविधा टारि

स्याम कौ एक तुरी बाब्यो दुराचरनी और

हरी से वे राधा के प्रेम को परम उदाहरण रूप ही लेते हैं—

पुनि पुनि कहति है ब्रजनारि

धन्य बद्धमागिनी राधा तेरे बस गिरधारि

धन्य नन्दकुमार धनि तुम धन्य तेरी

धन्य तुम दोउ नवल खोरी कोकला

हम विमुल तुम कृष्णसंगिनि प्राण

एक मन एक बुद्धि एक चित्त दुहुनि

एक दिन रिनु तुमहि देखे

मुरलि में दूष नाम पुनि पुनि

